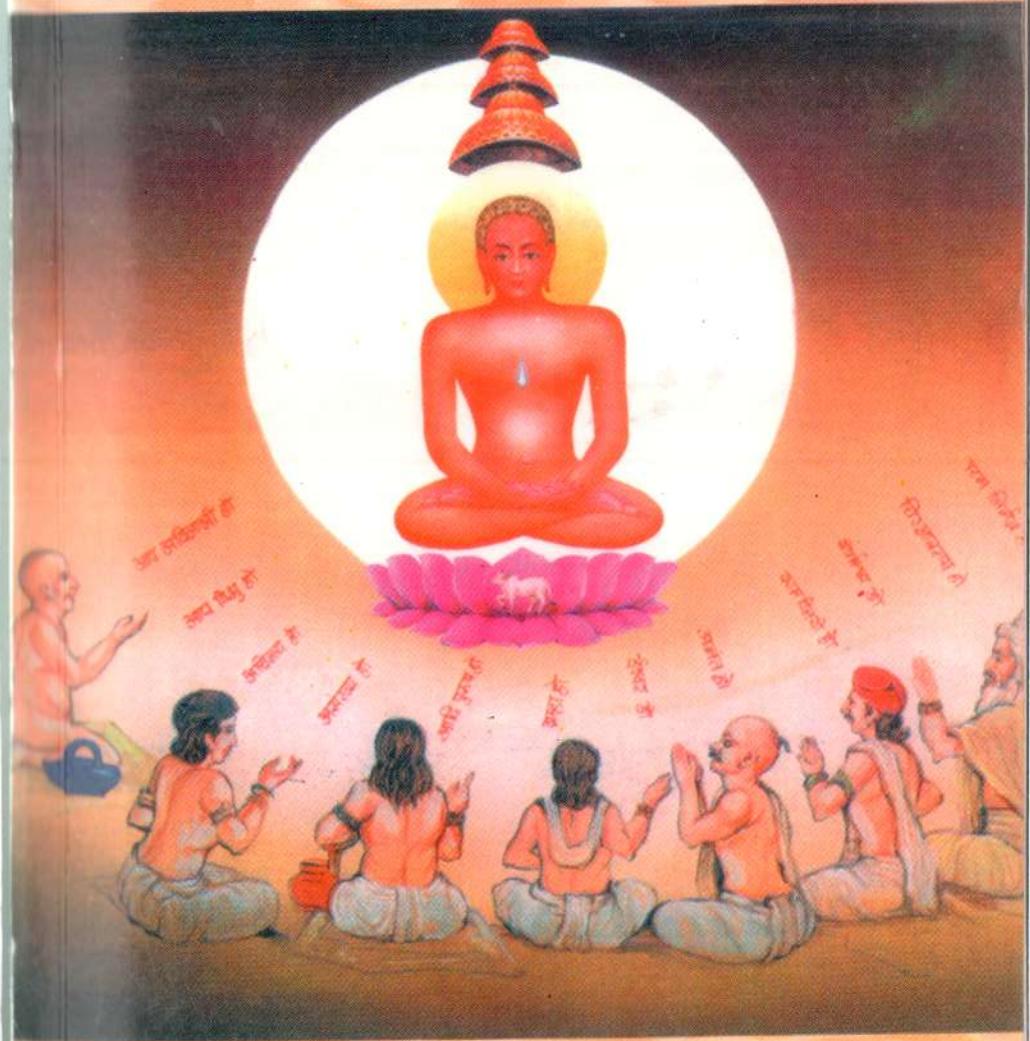


अनेकान्त के प्रकाश में मोक्ष मार्ग



आचार्य रत्न श्री कनकनंदीजी महाराज

शुभाशीर्वाद

वस्तु अनेक धर्मात्मक होने के कारण वस्तु स्वरूप अनेकान्तात्मक है। वस्तु में जो विभिन्न कार्य होते हैं वे कार्य भी अनेक कारणों से होने से वे कार्य भी अनेकान्तात्मक है। प्रत्येक कार्य के लिए योग्य, अंतरंग एवं बहिरंग कारणों के साथ-साथ विरोधी कारणों का भी अभाव होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर भात बनाना एक कार्य है। इसके लिये चावल अंतरंग कारण हैं परन्तु पानी, अग्नि, बर्तन आदि बहिरंग कारण हैं। गीला ईंधन आदि विरोधी कारण है। जब बर्तन में पानी रखकर के आग से पानी को गरम करके उसमें चावल डाला जाता है तब योग्य तापमान एवं समय प्राप्त करके चावल भात बन जाता है। उसी प्रकार मोक्षरूपी कार्य के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चरित्र अन्तरंग कारण हैं, तो उत्तम शरीर, आर्य क्षेत्र जैसे उत्तमक्षेत्र, चतुर्थकाल जैसे उत्तम काल रूपी बाह्य कारणों के सद्भाव तथा कषाय, कर्म आदि विरोधी कारणों का अभाव चाहिए। उपर्युक्त वर्णन तो संक्षिप्त वर्णन हुआ। इसका सविस्तार वर्णन इसी कृति में किया गया है तथापि यहाँ अनेकान्त की दृष्टि से थोड़ा वर्णन कर रहा हूँ। मोक्षमार्ग का प्रारम्भ चतुर्थ गुण-स्थान से होकर 14 वें गुणस्थान के अंत तक होता है। चतुर्थ गुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व के अपेक्षा सम्यग्दर्शन की पूर्णता होती है और उसके साथ-साथ सम्यग्दर्शन के अष्ट अंग प्रकट होते हैं। अष्टअंग के विरोधभूत अष्ट दोष का अभाव होता है। इस गुणस्थान में सप्तभय, सप्तव्यसन और अष्टमद का यथायोग्य अभाव होता है। पंचमगुणस्थान में अर्थात् श्रावक अवस्था में उपर्युक्त चतुर्थ गुणस्थान के गुणों के साथ-साथ और भी कुछ गुण प्रगट हो जाते हैं। इस गुणस्थान में अहिंसा आदि पांच अणुव्रत, गुणव्रत, शीलव्रत तथा दर्शन प्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमायें तथा देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान आदि गुण भी प्रगट होते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में सम्यक्त्व के अनुकूल चारित्र है परन्तु पंचम गुणस्थान में देशचारित्र भी होते हैं।

मुनि अवस्था में विशेषतः छहे गुणस्थान में अट्ठाईस मूल गुण होते हैं। श्रावकों के अणुव्रत होते हैं परन्तु मुनि के महाव्रत होते हैं। अठाईस मूल गुण के साथ-साथ 10 धर्म का भी पालन होता है। सप्तम गुण स्थान से लेकर ध्यान-अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। बारहवें गुणस्थान के अन्त में घाति कर्म नष्ट हो जाते

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग है जो अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग है, जिससे तेरहवें गुणस्थान में अर्थात् अरिहन्त अवस्था में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य प्रगट होते हैं। यहाँ पर सम्यग्ज्ञान पूर्ण क्षायिक हो जाता है। कुछ अरिहन्त दिव्य ध्वनि के माध्यम से धर्मोपदेश करते हैं। इस अवस्था में भी वार अघाति कर्म शेष होने के कारण तथा परम-यथाख्यात चारित्र के पूर्ण न होने के कारण यहाँ भी मोक्ष नहीं मिलता है। चौदहवें गुणस्थान में जब सम्पूर्ण योगों का निरोध हो जाता है और आत्मा निष्कम्प हो जाता है तब पूर्ण कर्म के आस्थव का निरोध हो जाता है। सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं तब पूर्ण मोक्ष की उपलब्धि होती है। मोक्ष अवस्था में समस्त द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म आदि के पूर्ण अभाव से भी आत्मा में किसी प्रकार की हानि नहीं होती है परन्तु आत्मा में पूर्णता, प्रखरता, निर्मलता, पूर्णतः आ जाती है।

इसी प्रकार मोक्ष मार्ग तथा आत्मा भी अनेकान्त स्वरूप है। समन्तभद्र स्वामी ने यहाँ तक कहा है कि—
 “बाह्योत्तरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
 नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्यस्त्वमृषिवृधानाम्॥”

अन्तरंग एवं बहिरंग कारणों से कार्य होना यह द्रव्यगत स्वभाव है। इसके बिना पुरुष को मोक्ष भी नहीं मिलता है। यह सिद्धान्त आपने विश्व को दिया इसलिए हे भगवान ! आप पूजनीय हो। आचार्यों ने यहाँ तक कहा कि अनेकान्त के बिना जैसे मोक्ष नहीं होता उसी प्रकार संसार का व्यवहार भी सम्भव नहीं होता।

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा णणिव्वडइ।

तस्स भुवणेक गुरुणों णमो अणेयंत वायस्स ॥६९॥

(स.सू.)

जिसके बिना लोक का व्यवहार भी सर्वथा नहीं चल सकता है, उस तीन लोक के अद्वितीय गुरु अनेकान्त दर्शन को मेरा नमस्कार है। वैसे तो वस्तु स्वरूप अनेकान्तमय होने से उसके जानने की प्रणाली भी अनेकान्त है और इस अनेकान्त प्रणाली की कथन प्रणाली ही स्याद्वाद है। इसलिए जैन धर्म में जो कुछ जानने की एवं कथन प्रणाली है इन मर्यादाओं के अनुसार ही है, इसका उल्लंघन करके नहीं है, भले हर स्थान में शाब्दिक रूप में अनेकान्त या स्याद्वाद शब्द प्रयोग हो या न हो।

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग है जो अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग है,

उपर्युक्त विषयों को ध्यान में रख करके मैंने इस कृति का नाम "अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग" रखा है। सम्पूर्ण जैनागम में मोक्षमार्ग का ही वर्णन है। तथापि मैंने आगम के अनुसार संक्षिप्त, सरल एवं क्रमबद्ध वर्णन इस कृति में किया है। विषय को समझाने के लिए तथा सरल करने के लिए कुछ विषय को अनेक स्थान में पुनरावृत्ति रूप में वर्णन किया है। भले यह वर्णन तर्कशास्त्र के अनुसार दोषप्रद है तथापि धर्म कथा में गुणप्रद है।

मिथ्याधर्म में तथा वर्तमान में अनेकान्तात्मक सत्य जैन धर्म में भी मोक्षमार्ग को लेकर अनेक वाद-विवाद, पक्ष-पात, संकीर्णतायें भी हैं। इन सब दोषों को दूर करने के लिए तथा यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए इस कृति का संकलन तथा प्रणयन किया गया है। इस कृति के लेखन कार्य में चावण्ड की मेरी धार्मिक शिष्याओं का योगदान रहा है। ये हैं :— कुशलप्रभा जैन, हेमलता जैन, आशा जैन, पुष्पा जैन, प्रेम जैन, चेलना जैन, चेतना जैन सलुम्बर की दर्शना जैन, सौ. सुरेखा जैन तथा राखी जैन (मु. नगर)।

उपर्युक्त सहायक कर्ताओं को द्रव्य दाताओं को, कार्यकर्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद।

यह अनेकान्तात्मक मोक्षमार्ग का अध्ययन, श्रद्धान, मनन, आचरण करके भव्यजीव अनन्त सुख-शान्ति प्राप्त करें ऐसी महती शुभ भावनाओं के साथ—

— आचार्य कनकनन्दी

चावण्ड (उदयपुर)

दि. 15-7-1999



V

(प्राञ्छनम्)

दर्शनमात्म विनिश्चितिरात्मपरिज्ञान मिश्यते बोधः।

स्थितिरात्मनि चरित्रं निश्चय-रत्नत्रयं वन्दे ॥

अनादि आवहमान काल से संसार के मध्य में चतुर्गति रूपी पथ के पथिक अनन्तों बार गमनागमन करते हुये भी अपना लक्ष्य गन्तव्य स्थल को एक बार भी प्राप्त नहीं कर सकते कारण उनका गमन, पुनरागम में परिवर्तित हो जाता है। ठीक ही है – कौन बुद्धिमान पथिक अपना गन्तव्य स्थल को प्राप्त किये बिना ही उसका गमन स्थगित कर देता है? वह पथिक अनादि अनन्त काल से अविश्रांत गमन करते हुये भी अपने लक्ष्य स्थल में नहीं पहुँचने का कारण क्या है? इसका सिफ एक ही उत्तर 'विपरीत गमन' (यदि कोई पथिक का लक्ष्य एक सरल रेखा की पूर्व में पहुँचने का है, किन्तु वह उस सरल रेखा की पश्चिम दिशा में गमन कर रहा है, तो वह अनन्त भविष्यत काल पर्यन्त कितना ही क्षिप्र गति से गमन करे तो भी वह उस सरल रेखा की पूर्व दिशा में नहीं पहुँच सकता, यदि वह सम्यक् मार्ग में गमन करना प्रारम्भ कर देगा तब वह निश्चित रूप से एक ना एक दिन अपने लक्ष्य स्थान को प्राप्त करके पुनः पुनरागमन नहीं करेगा। वह अनुपम, अनादि काल से अप्राप्य अत्यन्त दुर्लभ, अत्यन्त सरल एवं प्रशस्त पथ हुआ – "सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः"। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् चारित्र तीनों का एकीकरण ही अपुनरागमन पथ है। दंसणणाण चरित्राणि मोक्षमग्ग जिणा विंति।

"Self reverence, self knowledge, self control

These three alone lead life to- Sovereign power".

आत्म विश्वास, आत्मज्ञान एवं आत्म नियंत्रण तीनों मिलकर जीवन को एक महान शक्ति की ओर ले जाते हैं।

The Unity of heart, head and hand lead to liberation.

हृदय (श्रव्णा) मरित्यज्ञ (ज्ञान) हस्त (आचरण) के ऐक्य से (एकता) मुक्ति प्राप्त होती है एवं पथिक वहाँ पहुँचकर अनादि कालीन गमनागमन के पथ क्लान्त से निवृत्त होकर भविष्यत अनन्तकाल अपुनरागमन करके वहाँ कृतकृत्य होकर अनन्त सुख का अनुभव करने के कारण इस पथ को धर्म भी कहते हैं। "यः कर्म

निर्वहणम्: संसार दुखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे सः धर्मः"। अर्थात् जो कर्मों के नाशक, गमनागमन के (संसार के) दुःखों से जीवों को निकालकर अपुनरागमन स्थल में (मोक्ष) में पहुँचा देता है उसको धर्म कहते हैं। इससे विपरीत जो पथिक को अलक्ष्य स्थल में (संसार में) गमनागमन कराता है वह दुःख होने के कारण वह पुनरागमन पथ (अधर्म) है अर्थात् "यदीयप्रत्यनीकानी भवन्ति भवपद्धतिः"। जो सुख देने वाला है वह धर्म है वह वस्तु का अपना स्वभाव है "वत्यु सुहावो धर्मो,"

"The religion is the characteristic of the substance" जो अपना स्वभाव है उसका ही सेवन करना चाहिये अर्थात् अपने स्वभाव में रमण करना ही अपुनरागमन पथ है, निश्चय से यह पथ पथिक का (आत्मा का) स्वभाव है।

दंसणणाण चरित्राणि सेविदवाणि साहृणा णिच्चं।

ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणि चेव णिच्छयदो ॥

(स.सा. 19)

Right belief, knowledge and conduct should always be pursued by a saint from the practical stand point know all these three again, to be the soul itself from the real-stand-point.

यह पथ अन्य कोई अचेतन पदार्थों से बनाया हुआ नहीं है, क्योंकि यह पथ अन्य अचेतन द्रव्य में पाया ही नहीं जाता है, "दंसणणाण चरित्रं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसये"।

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आत्मा का स्वभाव होने पर भी स्वयं की दुर्बलता का सुयोग लेकर मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र, आत्मा को अनादि से चतुर्गति में गमनागमन करा रहा है। जब पथिक कालादि लक्ष्य को प्राप्त करके त्रयात्मक अपुनरागमन पथ को प्राप्त कर लेता है तब वह अपने लक्ष्य के अभिमुख गमन करना प्रारम्भ कर देता है एवं संपूर्ण त्रयात्मक पथ को प्राप्त करने के बाद वह वहाँ कृत-कृत्य होकर निवास करता है। वह त्रयात्मक पथ हुआ – (1) दर्शनमात्मविनिश्चित – आत्मा का निश्चय करना सम्यक् दर्शन है। (2) आत्मपरिज्ञान – मिश्यते बोधः – आत्मा का परिज्ञान सम्यक् ज्ञान है। (3) स्थितिरात्मनि चारित्र – आत्मा में ही रहना सम्यक् चारित्र है।

जब पर्यायार्थिक दृष्टि से देखते हैं तब यह पथ त्रयात्मक है किन्तु जब द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखते हैं तब वह पथ शुद्ध आत्मा ही है।

चतुर्गति रूपी पथिक के जब पंचमगति प्राप्त करने का समय उत्कृष्ट से

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग सिद्धि हो सकती है। जिस प्रकार वन में आग लगने पर जब अन्धा और लंगड़ा पृथक्-पृथक् रहते हैं तब तो वे वहीं जलकर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु जिस समय वे मिल जाते हैं अर्थात् अन्धे के कन्धे पर लंगड़ा बैठकर अन्धा को रास्ता दिखाये एवं अन्धा उसके अनुसार क्रिया करे तो दोनों ही नगर में आ सकते हैं। इसी प्रकार सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों का समवाय ही मोक्ष मार्ग है। 'अनन्तः सामायिक सिद्ध' से भी सिद्ध होता है कि तीनों का समवाय ही मोक्ष मार्ग है। ज्ञान रूप आत्मा के तत्व श्रद्धान् पूर्वक ही सामायिक रूप चारित्र हो सकता है। सामायिक अर्थात् पाप योगों से निवृत्त होकर अभेद समता और वीतरागता में स्थित होना है।

हतं ज्ञानं क्रिया हीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया ।

धावन् किलास्यको दग्धः पश्यन्यपि च पंगुलः ॥

(त.रा.)

संयोगमेव हि वदंति तज्ज्ञा न ह्येक चक्रेण रथः प्रयाति ।

अन्धश्च पंगुश्च वनं प्रतिष्ठं तौ संप्रयुत्त्मौ नगरं प्रविष्ट्यै ॥

(गो.क.)

चारित्र के बिना ज्ञान नष्ट है अर्थात् किसी काम का नहीं एवं ज्ञान के सहचारि दर्शन भी किसी काम का नहीं। जिस तरह वन में आग लग जाने पर उसमें रहने वाला पंगु मनुष्य वहाँ से निकल जाने के मार्ग को जानता है कि इस मार्ग से जाने पर मैं अग्नि से बच सकूँगा इस बात का उसको श्रद्धान् भी है परंतु चलने रूप क्रिया (चारित्र) नहीं कर सकता है इसलिए वहाँ जलकर नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान (ज्ञान के सहचर दर्शन) रहित क्रिया (चारित्र) भी निरर्थक है जिस प्रकार वहाँ रहनेवाला अन्धा जहाँ तहाँ दौड़ने रूप क्रिया करता है किन्तु न उसको मार्ग का ज्ञान एवं श्रद्धान् ही है कि यह निश्चित मार्ग नगर में पहुँचाने वाला है। इसलिए वह वहाँ जलकर नष्ट हो जाता है।

दो चक्रवाला रथ एक चक्र से गमन नहीं कर सकता। उसी प्रकार अकेले सम्यक् दर्शन या सम्यक् ज्ञान या सम्यक् चारित्र से मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि यह सिद्धांत है कि जो कार्य तीन कारणों से होता है वह कार्य एक या दो कारणों से नहीं हो सकता। तीनों ही कारणों की समवाय से ही उस कार्य की

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग सिद्धि हो सकती है। जिस प्रकार वन में आग लगने पर जब अन्धा और लंगड़ा पृथक्-पृथक् रहते हैं तब तो वे वहीं जलकर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु जिस समय वे मिल जाते हैं अर्थात् अन्धे के कन्धे पर लंगड़ा बैठकर अन्धा को रास्ता दिखाये एवं अन्धा उसके अनुसार क्रिया करे तो दोनों ही नगर में आ सकते हैं। इसी प्रकार सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों का समवाय ही मोक्ष मार्ग है। 'अनन्तः सामायिक सिद्ध' से भी सिद्ध होता है कि तीनों का समवाय ही मोक्ष मार्ग है। ज्ञान रूप आत्मा के तत्व श्रद्धान् पूर्वक ही सामायिक रूप चारित्र हो सकता है। सामायिक अर्थात् पाप योगों से निवृत्त होकर अभेद समता और वीतरागता में स्थित होना है।

इस त्रयात्मक मार्ग में जिसके नेतृत्व में कार्य प्रारम्भ होता है वह हुआ सम्यक् दर्शन। क्योंकि "तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञान चारित्रं च"। सम्यक् दर्शन के होने पर ही सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र होता है। जिस प्रकार प्रथम में एकादि संख्या के बिना अनेक शून्य '0' का मूल्य कुछ नहीं होता, किन्तु प्रथम में एकादि संख्या की सद्भाव से उत्तर के शून्य के मूल्य की दश गुण वृद्धि हो जाती है उसी प्रकार सम्यक् दर्शन के बिना "शम्बोध व्रत तपसां पाषाण स्वेव गौरवं पुंसः" हो जाता है। अर्थात् सम्यक् दर्शन के बिना कषायों के उपशमन, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पाषाण के भारीपन के समान व्यर्थ है। 'पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वं संयुक्तम्' परंतु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है तो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है। इसलिए सम्यक् दर्शन मोक्ष मार्ग में ज्ञान, चारित्र की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं कर्णधार के समान है। परन्तु सम्यक् दर्शन से ही एकान्त से मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि दर्शन मात्र से ही मोक्ष माना जाय तो सम्यक् दर्शन प्राप्ति के बाद उत्कृष्ट से अर्धपुद्गल परावर्तन काल पर्यंत क्यों संसार में परिभ्रमण करते हैं? क्षायिक सम्यक्तृष्णि के दर्शन मोहनीय के समस्त कर्म क्षय हो जाने के बाद भी वह उत्कृष्ट से आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि अधिक तेंतीस सागर पर्यंत संसार में क्यों भ्रमण करते हैं? सम्यक् ज्ञान की पूर्णता चौथे गुणस्थान में हो गई तो भी संसार में उत्कृष्ट से 8 वर्ष कुछ अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटी वर्ष तक क्यों विहार करते हैं? उन समस्त प्रश्नों का उत्तर एक ही है - अभी तक सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र की पूर्णता का अभाव।

यदि एकान्त से ज्ञान मात्र से ही मोक्ष माना जाय तो, एक क्षण भी पूर्ण

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग ज्ञान के बाद संसार में ठहरना नहीं हो सकेगा, उपदेश तीर्थ प्रवृत्ति आदि कुछ भी नहीं हो सकेंगे। परन्तु 13 वें गुणस्थान में सम्पूर्ण ज्ञान होने पर भी उल्कृष्ट से 8 वर्ष कुछ अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक मंगल विहार करते हुये अपुनरागमन पथ का उपदेश देते हैं। यह संभव ही नहीं है कि दीपक भी जल जाये और अंधेरा भी रह जाय। उसी तरह यदि ज्ञान मात्र से ही मोक्ष हो तो वह संभव ही नहीं हो सकता कि ज्ञान भी हो जाय और मोक्ष नहीं हो। यदि पूर्ण ज्ञान होने पर भी कुछ संस्कार (चार अधातिया कर्म) ऐसे रह जाते हैं जिसके नाश हुए बिना मुक्ति नहीं हो सकती। इससे यह सिद्ध हुआ कि संस्कार क्षय से मुक्ति होगी ज्ञान मात्र से नहीं। फिर इन संस्कारों का क्षय ज्ञान से होगा या अन्य कारण से? यदि ज्ञान से है तो ज्ञान होते ही संस्कारों का क्षय भी हो जायेगा और उत्तर क्षण में ही मोक्ष हो जाने से तीर्थोपदेश आदि नहीं बन सकेंगे। यदि संस्कार क्षय के लिये अन्य कारण अपेक्षित हैं तो वह चारित्र ही हो सकता है, अन्य नहीं। मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य तीनों कारणों से होता है। 13 वें गुण स्थान तक दर्शन एवं ज्ञान की पूर्णता हो गई तो भी कार्य नहीं हुआ। यह नियम है कि 'प्रतिबन्धक का अभाव होने पर सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थ कारण कहते हैं एवं समर्थ कारण के होने पर अनन्तर समय में कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है। अतः पारशेशिक न्याय से सिद्ध हुआ कि संस्कारों का पूर्ण रूप से नाश का अभाव सम्यक् चारित्र की पूर्णता के अभाव ही है। 14 वें गुण स्थान में चारित्र की पूर्णता से प्रतिबन्धक का नाश होता है एवं अनन्तर समय में मोक्ष रूपी कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है। इसमें अनन्तर पूर्व-क्षण-वर्ती मोक्ष चारित्र पर्याय उपादान कारण है, और उत्तर क्षणवर्ती रूपी पर्याय कार्य है। इससे सुनिश्चित सिद्ध हुआ मोक्ष रूपी कार्य में उपादान कारण सम्यक् चारित्र है। सम्यक् चारित्र की पूर्णता शैलेशों के अर्थात् 14 वें गुणस्थान में होता है।

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिरवसेस आसवो जीवो।

कम्मरयविष्पमुक्को गयजोगी केवली होदि॥

(गो.सा.जी. 65)

जो सम्पूर्ण १८००० शील का (चारित्र के) स्वामी हो चुका है और पूर्ण संवर तथा निर्जरा का सर्वोक्तृष्ट एवं अन्तिम पात्र होने से मुक्तावस्था के सम्मुख है। समस्त प्रकार के योग से रहित है, अपुनरागमन पथ के यात्री, अपुनरागमन पथ के समर्थ कारण हैं, उन्हीं को अयोग केवली या शील का अर्थात् चारित्र का

स्वामी कहा जाता है।

अपुनरागमन पथ के पथिकों ने इस चारित्र से परम उपकार को हृदयंगम करके उसके प्रति अपने कृतज्ञता ज्ञापन कराने के लिये चारित्र का अन्यन्य स्तुति करते हैं एवं उसके आशीर्वाद की कामना करते हैं। यथा : -

शिव-सुख फलदायि यो दयाछाय-योद्धः ।

शुभ-जन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः ।

दुरितर विजतापं प्रापयन्तभावं,

स भव विभव हान्यैनोऽस्तु चारित्रवृक्षः ।

(वीरभक्ति)

जो पथिकों के मोक्ष रूपी शाश्वतिक अनुपम सुख रूपी फल को देने वाला है, शान्ति प्रदान करने वाला, दया रूप छाया से प्रशस्त है जो कि पथिकों के संताप को दूर करने में समर्थ है, पापरूप सूर्य के संताप का अन्त करनेवाला है, वह चारित्र वृक्ष हमारे संसार में जो गमनागमनादि भव हैं, उसके विनाश के लिये होवे।

पथिकों ने केवल अत्यंत मधुर, लालित्य, लच्छेदार शब्द से स्तुति करके अपना मनमाना पांडित्यपना प्रगट करके कालादि लब्धि के ऊपर अपने कर्तव्य को तिलांजलि देकर प्रमादि होकर संसार भोगों में लिप्त नहीं रहे। परन्तु प्रमाद त्याग करके अनगुह्यबलवीर्य के अनुसार चारित्र का पालन किये।

चारित्रं सर्वं जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।

प्रणमामि पंचभेदं पंचम चारित्रं लाभाय ॥

(वीर भक्ति)

समस्त तीर्थकरों ने स्वयं चारित्र को धारण किये एवं समस्त शिष्यों को चारित्र धारण करने का उपदेश दिये। अतः समस्त कर्मों के क्षय के साधक पंचम यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के लिये सामायिकादि पंच भेद से युक्त चारित्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में पूर्व की प्राप्ति होने पर उत्तर की प्राप्ति भजनीय है अर्थात् हो भी न भी हो। परन्तु उत्तर की प्राप्ति में पूर्व की प्राप्ति निश्चित है वह होगी ही। जिसे सम्यक् चारित्र होगा उसे सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन होंगे ही परन्तु जिसे सम्यक् दर्शन है उसे पूर्ण सम्यक् ज्ञान

XI

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग और सम्यक् चारित्र हो भी और न भी हो। क्षायिक सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होने पर क्षायिक ज्ञान हो और न भी हो, किन्तु जहाँ क्षायिक ज्ञान है वहाँ क्षायिक सम्यक् दर्शन निश्चित रूप में ही है परन्तु वहाँ सम्पूर्ण क्षायिक सम्यक् चारित्र हो भी न भी हो। किन्तु जहाँ सम्पूर्ण क्षायिक चारित्र है वहाँ सम्पूर्ण क्षायिक सम्यक् दर्शन एवं सम्पूर्ण क्षायिक ज्ञान होगा ही है, इस प्रकार सम्यक् चारित्र में त्रयात्मक मार्ग रहेगा ही।

चारित्र की उपादेयता इस लोक, पर लोक, देश, समाज, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यक्तिगतादि प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक है, यह सारा विश्व स्वीकार करता है। यथा—

If wealth is lost nothing is lost,
If Health is lost something is lost,
If character is lost everything is lost.

यदि धन नष्ट हुआ, तो कुछ नहीं हुआ क्योंकि धन पुद्गल की पर्याय है एवं पुण्य का दास है, पुद्गल का स्वभाव मिलना एवं वियोग होना है। धन आत्मा से अत्यन्त भिन्न है। यदि स्वास्थ्य नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट हुआ क्योंकि “शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्” अर्थात् शरीर के माध्यम से धर्म साधन होता है अतः स्वास्थ्य नष्ट होने से धर्म में आधात होने से कुछ नष्ट होता है। यदि चारित्र नहीं रहा तो सर्वस्व ही नष्ट हो गया, क्योंकि चारित्र जीव का स्वभाव, सर्वस्व एवं धर्म है। “चारितं खलु धर्मो” अर्थात् चारित्र निश्चय से धर्म है। धर्मों का समुदाय ही धर्मी है। यदि धर्म ही नहीं रहा तब धर्मी (वस्तु) कैसे रह सकता है? जैसे अग्नि का प्रकाशत्व, उष्णत्व, पाचकत्व आदि धर्म नहीं रहेगा तो अग्नि ही कैसे रह सकती है? किन्तु जिस पथिक का अपुनरागम पथ प्राप्त करने के समयलब्धि अत्यन्त अधिक है उसके प्रवृत्ति विपरीत ही है।

“जानामि धर्म न मे प्रवृत्ति, जानामि अधर्म न च मे निवृत्ति”। धर्म को जानूंगा किन्तु धर्म से प्रवृत्ति नहीं करूंगा। अधर्म को जानूंगा किन्तु अधर्म से निवृत्ति नहीं लूंगा। ऐसी विचारधारा स्वतंत्र न होकर स्वच्छंद होती है।

As Like this

If Character is Lost nothing is Lost,
If Health is Lost Something is Lost,
But Wealth is Lost everything is Lost.

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

यदि चारित्र नष्ट हुआ कुछ भी नष्ट नहीं हुआ क्योंकि यह तो बाह्य वस्तु है। यदि स्वास्थ्य नष्ट हुआ कुछ नष्ट हुआ। क्योंकि धन कमाने में एवं भोग करने में आधात हुआ। किन्तु धन नष्ट हुआ तो सर्वस्व नष्ट हो गया क्योंकि

Gold is God and God is gold.

अर्थात् सुवर्ण (धन) भगवान है एवं भगवान सुवर्ण है, अतः धन नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो गया, इस प्रकार जिसका श्रद्धान ज्ञान एवं आचरण है वह अपना गमनागमन पथ को प्रशस्त कर रहा है। परन्तु जो अपुनरागमन के पथिक हैं उसका आचरण इससे विलक्षण होता है।

दया दम त्याग समाधि संततैः

पथि प्रयाहि प्रगुण प्रयत्नवान् ।

नयत्यवशं वचसामगोचरं

विकल्पदूरं परमं किमज्यसौ

(आत्मा. 107)

हे अपुनरागम पथ के पथिक। तू अत्यन्त प्रयत्नशील होकर सरल भाव से धर्म के मूल दया, गमनागमन पथ के अत्यन्त दुर्निवार इन्द्रिय रूपी अश्व एवं मन रूपी सारथि का दमन, अपुनरागमन पथ के बोझ स्वरूप अन्तरंग एवं बहिरंग 24 प्रकार परिग्रह का त्याग और अपुनरागमन पथ में गति करने रूप ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ, वह मार्ग निश्चय से तुम्हारा अनन्त काल से आप्राप्य लक्ष स्थल जो: अत्यन्त उत्कृष्ट निरापद स्थान को प्राप्त करता है, जो वचन से अनिवृच्यनीय एवं समस्त गमनागमन विकल्पों से रहित है वह ही तुम्हारा अविनश्वर अपुनरागम पथ का फल है शाश्वतिक सुख, अनुपम, आल्हाद, सच्चिदानन्द रूप है। अतएव हे! अनादि कालीन पथ भूले पथिक तुम अपने पथ को प्राप्त करके पुनः अवहेलीत भाव से उस पथ को त्याग करके गमनागमन पथ में अनन्त काल (अर्धया पूर्ण परिवर्तन काल) तक परिभ्रमण करके दुख, क्लेश, संताप उठाने का पात्र मत बन।

जयतु अपुनरागमन पथः ॥

(आचार्य कनकनन्दी जी की शुल्कावस्था का लेख)



मेरी विवशता तथा चिन्ता क्यों? कब?

— आचार्यरत्न कनकनंदी

1. क्योंकि मैं ‘सर्वजीव सुखकारी’ ‘सर्वजीव हितकारी’ संकीर्णता से रहित भाव की पवित्रता से युक्त, वैज्ञानिक सत्य, उदार धर्म को चाहता हूँ और उसका प्रचार-प्रसार करना चाहता हूँ परन्तु अधिकांश व्यक्ति विभिन्न संकीर्णता, भाव की मलिनता, अन्ध-विश्वास, अनुदार भाव से युक्त होते हैं और वे धर्म का प्रचार-प्रसार इस ही दृष्टि से करना चाहते हैं।.... तब

2. कषाय रहित भाव की पवित्रता ही वस्तुतः अहिंसा है परन्तु स्वयं को अहिंसा के अनुयायी मानने वाले भी अधिकांश व्यक्ति ईर्ष्या, द्वेष, तृष्णा, घमण्ड, नाम, ख्याति-पूजा, लाभ से ओत-प्रोत रहते हैं और जिससे आनुशंशिक रूप से भी एकेन्द्रिय जीव की द्रव्य हिंसा हो जाती है उसे हिंसक पापी मानकर उससे घृणा करते हुए और भी हिंसा रूपी सागर में बेसहारा ढूबते जाते हैं।.... तब

3. भाव को पवित्र करना, संक्लेश भाव से रहित होना, तथा आध्यात्मिक सुख शान्ति को प्राप्त करना धर्म का उद्देश्य है। और इसके लिए विभिन्न धार्मिक क्रिया-काण्डों की आवश्यकता होती है परन्तु जब धार्मिक क्रिया-काण्डों में संक्लेश, धन संग्रह, विग्रह (फूट), अशान्ति, अनुशासन विहीनता पाई जाती है।.... तब

4. ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ प्रत्येक जीव में परम ब्रह्म का दर्शन करने वाले, जीव में जिनेन्द्र को मानने वाले जब गुरु शिष्य, सधर्मी, पिता-पुत्र, भाई-भाई लड़ते हैं। दूसरों को नीचा दिखाते हैं दूसरों को क्षति पहुँचाते हैं, फूट डालते हैं..... तब

5. सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को रक्षा करने वाले जब पंचेन्द्रिय मनुष्य यहाँ तक कि माता-पिता गुरु-शिष्य को संकट में डालते हैं, असुरक्षा उत्पन्न करते हैं..... तब

6. संस्कार, सदाचार, सद्विचार को अपनाना और इसका प्रचार-प्रसार करने रूप प्रभावना को छोड़कर ईट-पत्थर को इकट्ठा करना (भवन निर्माणादि), धन का संग्रह करना, हाथी घोड़ा आदमियों की भीड़ लगाना रूपी प्रभावना करते हैं... तब ...

7. जब दिग्म्बर जैन साधु तक सिद्धि को छोड़कर प्रसिद्धि, णमोकार को छोड़कर ममकार, धर्म को छोड़कर धन, वात्सल्य भाव को छोड़कर राग, समता को छोड़कर ममता, वीतरागता को छोड़कर वित्तरागता, निर्ममत्व को छोड़कर निर्मम के पीछे पड़ते हैं..... तब

8. मौनपूर्वक, एकान्तवास करके पूर्णसमता तथा क्षमता के साथ ध्यान, अध्ययन एवं तपश्चरण के माध्यम से पूर्ण सत्य को जानकर-मानकर आचरणकर स्वयं ‘‘सत्यसाम्यसुख’’ स्वरूप बनकर विश्व को भी इसी प्रकार बनाने की भावना भाता हूँ परन्तु शारीरिक असमर्थता (शरीर की उष्णता, भवंकर अम्लपित्त उल्टी, गर्भ से स्वास्थ्य खराब होना भोजन योग्य न होने पर उल्टी-स्वास्थ्य बिगड़ना आदि) विपरीत परिस्थिति, प्रतिकूल जन-मानस, अयोग्य आहार आदि से भावना को क्रियान्वित नहीं कर पाता हूँ..... तब

9. (1) धी को छोड़कर धी के घड़े (धी रहित केवल पूर्व में जिस घड़े में धी था ऐसा घड़ा) को ही धी मान लेने के समान जब जीवन्त यथार्थ धर्म स्वरूप साधु, श्रावकों आदि का अनादर, तिरस्कार करते हैं उनकी सेवा, सुरक्षा व्यवस्था नहीं करते हैं परन्तु प्रतीक धर्म स्वरूप मन्दिर, मूर्ति आदि को यथार्थ धर्म मानकर उसकी सेवा, व्यवस्था करते हैं..... तब ...

(2) इस ही प्रकार जीव जब भाव की पवित्रता के बदले धार्मिक - क्रिया - काण्डों को, सर्व-धर्म को छोड़कर अन्ध परम्पराओं को, सत्य-तथ्य के परिवर्तन में रीति-रीवाजों को महत्व देता है.. तब..

10. शिक्षा, विद्या, ज्ञान, धर्म, राजनीति, संविधान, कानून आदि जीवों के सुख, शान्ति, सम्बृद्धि, विकास के लिए हैं परन्तु जब मनुष्य इसका दुरुपयोग दुःख अशान्ति, अवरुद्ध विनाश के लिए करता है तब

11. जो भारत विश्वगुरु, सोने की चिड़िया, अहिंसा प्रधान, आध्यात्मिक, धर्म प्रधान के कारण महान कहलाने वाला था उस देश में जब भ्रष्टाचार, हिंसा, बलात्कार, धोका-घड़ी, गुण्डागर्दी, धर्णांधला, संकीर्णता, अन्धविश्वास, अकर्मण्यता आदि के कारण गरीब बर्बर, भ्रष्ट, दीन-हीन, कायर विवश, पाया जाता है.... तब

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के उद्देश्य एवं नियम

उद्देश्य :— धर्म दर्शन विज्ञान एवं संप्रदाय के समन्वयक वैज्ञानिकाचार्य तथा धर्म, दर्शन, इतिहास, शिक्षा, स्वारथ्य, मंत्र, मनोविज्ञान तथा विज्ञानादि के समीक्षात्मक शोधपूर्ण शताधिक ग्रन्थों के रचयिता आचार्य रत्न श्री कनकनन्दी गुरुदेव के मार्गदर्शन व आशीर्वाद से यह संस्थान कार्यरत है। इसका मुख्य उद्देश्य है विश्व को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाने के लिए धर्मान्धता तथा संकीर्ण भौतिक विज्ञान से ऊपर उठकर वैज्ञानिक धर्म का प्रचार-प्रसार करना। यह संस्थान विश्व के द्वारा, विश्व के लिये, विश्व का है। अतः इसमें प्रत्येक विश्व-मंगल कामनार्थियों को, मन-मन-धन-समय से भाग लेकर सहयोग करने की भावना भाते हैं तथा आहवान करते हैं।

नियम : संस्थान की ओर से साधु-संघों को पुस्तकें निःशुल्क भेट की जाती है। पूरे सेट क्रय करने पर पुस्तकालय, वाँचनालय, शिक्षण संस्थाओं के लिये 15% छूट से शास्त्र दिये जाएंगे तथा सामान्य स्वाध्याय प्रेमियों के लिये 10% छूट है, डाक खर्च अलग से है।

आजीवन सदस्यता : 5001/-रु. अग्रिम भेजने की आवश्यकता है। द्रव्यदाता आजीवन सदस्य व कार्यकर्त्ताओं को संस्थान की ओर से समस्त पुस्तकें निःशुल्क दी जाती हैं। आर्थिक दृष्टि से समर्थ सामान्य व्यक्ति से उचित मूल्य इसलिये प्राप्त किया जाता है कि जिससे साहित्य का अवमूल्यन न हो, योग्य व्यक्ति को ज्ञानदान (सहयोग) हो, साधु आदि को निःशुल्क साहित्य भेजने में आर्थिक आपूर्ति हो एवं उस सहयोग से अधिक साहित्य का प्रकाशन प्रचार-प्रसार हो। द्रव्यदाता को उस द्रव्य से प्रकाशित प्रतियों की एक दशमांश प्रतियाँ भी निःशुल्क प्राप्त होंगी। पुस्तकें छपवाने वाले यदि लागत रूपयों में से कुछ रूपये देने में असमर्थ होंगे तो संस्थान उसकी आर्थिक सहायता के साथ साथ अन्यायन्य सहायता करके उनके नाम पर ही उसकी पुस्तक छपा देगा। इसमें संस्थान का कोई निहित स्वार्थ नहीं है। परन्तु ज्ञान-प्रसार एक मात्र उद्देश्य है। जो ज्ञान-प्रेमी, ज्ञानदानी, महानुभाव, ज्ञानदान, गुप्तदान, सहायता करना चाहते हैं वे सहर्ष, स्वेच्छा से करें। क्योंकि संस्थान के लिये चन्दा, याचनादि नहीं की जाती है। अधिक सहायता करने वाले को संस्थान में पदभार भी दिया जाता है।

आजीवन सदस्य ध्यान दें :- साथ ही जिन आजीवन सदस्यों ने 1100/-रु. सदस्यता के रूप में दिये हैं उन्हें पुनः 3000/-रूपया देना पड़ेगा, इसी प्रकार जिन्होंने 2100/- से लेकर 2500/-रूपया दिया है वे पुनः 2000/-रूपया निम्न पते पर भेजने की कृपा करें। हमें ऐसा इसलिए करना आवश्यक हुआ है क्योंकि आचार्य श्री के अनेक बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं। तथा कई ग्रन्थों की माँग अधिक होने के फलस्वरूप उनको पुनः अधिक संख्या में प्रकाशन होने के साथ ही डाक व्यय अधिक होने के कारण उपर्युक्त व्यय भार बढ़ गया है। अतः आजीवन शुल्क अतिरिक्त भेजने की आवश्यकता है इसके बिना बड़े ग्रन्थ एवं नवीन ग्रन्थ आपके पास भेजने के लिए असमर्थ हैं। साहित्य प्रकाशन करनेवाले ज्ञानदानी तथा आजीवन सदस्य आदि को समस्त साहित्य निःशुल्क प्राप्त होते हैं। परम शिरोमणि संरक्षक एवं शिरोमणि संरक्षक का नाम प्रत्येक पुस्तक एवं संस्थान के लेटर हेड में आयेगा।

संस्थान के लिए आपका सहयोग

(1)	आजीवन सदस्यता	5001.0 रु.
(2)	संरक्षक	11000.00 रु.
(3)	परम संरक्षक	25000.00 रु.
(4)	शिरोमणि संरक्षक	51000.00 रु.
(5)	परम शिरोमणि संरक्षक	100000 रु.

आश्चर्यजनक भविष्यवाणी: जो एक अपमृत्यु द्वारा पूरी होई। लन्दन का वॉल्टर इन्ग्रेम 1884 में मिस्र से एक प्राचीन राजकुमारी का परिरक्षित हाथी ले आया, जिस पर एक सुनहरी पट्टी पर ये शब्द अंकित थे — ‘जो कोई भी मुझे विदेश ले जायेगा, वह बेमौत मारा जायेगा और उसकी हड्डियाँ भी नहीं मिलेंगी। चार वर्ष बाद इंग्रेम बरवेरा (सोमाली लेन्ड) के निकट एक मदमस्त हाथी द्वारा कुचल कर मार डाला गया और उसके अवशेष एक नदी की सूखी रेत में दब गये। किन्तु जब एक अभियान दल उसके शव को प्राप्त करने के लिए भेजा गया तो उन्होंने पाया कि बाढ़ उसे बहा ले गई।

संस्थानका संक्षिप्त परिचय

1. धर्म दर्शन विज्ञानशोध संस्थान का उदात्त उद्देश्य :-

अखिल विश्व के सर्वश्रेष्ठ महान त्रिकालं अबाधित परम सत्य को धार्मिक आस्था से दार्शनिक-तार्किक पन्द्रुति द्वारा वैज्ञानिक परीक्षण-निरीक्षण प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में परिशीलन, परिज्ञान, परिपालन, साक्षात्कार, संदर्शन उपलब्धि करके स्वयं को समग्रता से परिपूर्ण परम सत्य स्वरूप परिनिर्माण करना है। अतः इसका सर्वोपरी उद्देश्य:-

“संचवं भगवं” सत्य ही परमेश्वर है।

“सत्यं शिवं सुन्दरम्”

“सच्चिदानन्दम्”

“उत्पाद व्यय ध्रीव्य युक्तं सत्”

“Truth is God and God is truth.”

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र विश्व में उदारता पूर्ण सत्य वैज्ञानिक धर्म के माध्यम से प्रचार शीलता, प्रखरता समरसता सुख शान्ति का प्रचार-प्रसार करना है।

2. संस्थान के कार्यक्षेत्र :-

(१) आचार्य कनकनन्दी के साहित्य का विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन करना तथा देश-विदेश में प्रचार प्रसार करना।

(२) संगोष्ठी सम्बन्धी स्मारिका का प्रकाशन करना।

(३) स्थानीय शिविर से लेकर जिला, प्रदेश-राष्ट्र स्तरीय एवं धर्मदर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना।

(४) राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियों का आयोजन करना।

(५) विभिन्न क्षेत्र के योग्य व्यक्तियों को उपाधि पुरस्कारादि देकर सम्मानित करना।

(६) इंटरनेट तथा टी.वी. के माध्यम से आचार्य श्री के साहित्य, उद्देश्य तथा प्रवचनों का प्रचार-प्रसार करना।

(७) पशु-पक्षी, पर्यावरण, असहाय-व्यक्ति, रोगी, गरीब, पीड़ित व्यक्ति आदि को सहायता पहुँचाना।

(८) शोध कार्यों के लिए, संस्थान के कार्यों के लिए, साहित्य प्रकाशन सुरक्षा

के लिए वैज्ञानिक उपकरण यथा कम्प्यूटर, कम्प्यूटर लाइब्रेरी, इंटरनेट, ओवर हेड प्रोजेक्ट आदि क्रय करना।

3. सर्वजन-सहयोग

सत्य-उपासक, उदारमना, एवं परोपकारी महानुभावों! यह संस्थान “सर्वजीव हिताय” “सर्वजीव सुखाय” रूपी महान् लक्ष्य को आदर्श मानकर कार्यरत है। अतः यह संस्थान विश्व के द्वारा, विश्व के लिए है। अतः अर्थ सहयोग, श्रम सहयोग, शिविर में सहभागी, संगोष्ठी में सहभागी, उपाधि, एवं पुरस्कार प्राप्ति में देश-विदेश के जैन एवं अन्य धर्मावासी सज्जन महानुभावों का भी सादर आमंत्रण, आह्वान, सुस्वागत है।

बन्धुवर !

आप एक विचारशील, स्वाध्याय प्रेमी और धर्मवत्सल बन्धु हैं। युवी पीढ़ी हेतु विशेष रूप से पूज्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी द्वारा रचित तथा “धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान” और विभिन्न स्थानों से प्रकाशित ग्रन्थों के पठनोपान्त आप निम्न प्रकार से हमें सहयोग दे सकते हैं। आपका सहयोग हमारे उद्देश्य और लक्ष्य का सम्बल है।

- (१) पुस्तकों के विषय में अमूल्य, उपयोगी एवं निष्पक्ष सुझाव देकर।
- (२) अन्य स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं से पुस्तक के विषय में चर्चा करके
- (३) अपने इष्ट मित्रों एवं रिश्तेदारों को प्रकाशन की पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा देकर।

(४) यथा शक्ति अप्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशन में अपना सहयोग देकर।

(५) प्रकाशित पुस्तकें पर्व आदि पर वितरणार्थ मंगवाकर।

4. संस्था की नियमावली :-

(१) विवक्षित पुस्तक के प्रकाशनार्थ द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियाँ दी जायेगी।

(२) ग्रंथ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रन्थमाला का आजीवन सदस्य रहेगा। तथा उन्हें ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

(३) साधु, साध्वी, विशिष्ट विद्वज्जन और विशिष्ट धर्मायतनों को पुस्तक निःशुल्क दी जायेगी।

(४) ग्रन्थमाला से सम्बन्धित कार्य-कर्त्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक एक

प्रति निःशुल्क दी जायेगी ।

आपका आर्थिक सहयोग

- (१) आजीवन सदस्यता 5000/- रु.
- (२) संरक्षक 11000/- रु.
- (३) परम संरक्षक 25000/- रु.
- (४) शिरोमणि संरक्षक 51000/- रु.
- (५) परम शिरोमणि संरक्षक 1,00,000/रु.

आपका अन्य सहयोग :- संगोष्ठी, शिविर आदि में साहित्य, पुरस्कार आर्थिक सहायता, श्रमदान आदि देकर।

विशेष- संस्थान की प्रत्येक पुस्तक, स्मारिका में संस्थानके कार्यकर्ता, शिरोमणि और परम शिरोमणि संरक्षक के नाम छपेंगे । जो जिस साहित्य या कार्य में अर्थ, श्रम, बौद्धिक सहायता करेगा उसमें उसका नाम प्रकाशित होगा और सम्मानित किया जायेगा ।

आप से प्राप्त धन का सदुपयोग :- ज्ञान दान, आजीवन सदस्यता आदि से प्राप्त धन, गुप्तदान, साहित्य-विक्रम से प्राप्त धन, संस्थान को प्राप्त पुरस्कार का धन साहित्य प्रकाशन आदि उपर्युक्त संस्थान के कार्य क्षेत्रों में संस्थान के वैज्ञानिक यंत्रादि क्रय में सदुपयोग किया जाता है ।

- **अतिथि को देव बनकर दूसरों के यहाँ जाना चाहिए न कि दानव बनकर ।**
 - **अतिथि ग्रहस्थों के जीवन्त देव हैं । वे देने के लिए आते हैं । उनके साथ डाकू सा व्यवहार ना करें ।**
 - **महानता का प्रतीक है “सादा जीवन उच्च विचार” । “सादा जीवन नीच विचार” या “विलासी जीवन उच्च विचार” महानता में बाधक हैं ।**
- आचार्य कनकनन्दीजी

“आचार्यश्री कनकनन्दीजी द्वारा रचित ग्रन्थ”

क्रम	शीर्षक	मूल्य
(1)	धर्म विज्ञान बिन्दु	15.00 रु.
(2)	धर्म ज्ञान एवं विज्ञान	15.00 रु.
(3)	भाग्य एवं पुरुषार्थ (पंचम संस्करण)	15.00 रु.
(4)	Fate and Efforts	15.00 रु.
(5)	व्यसनका धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि. सं.)	20.00 रु.
(6)	Nakedness of Digamber Jain Saints and Kesh Lonch (तृतीय संस्करण)	5.00 रु.
(7)	पुण्य पाप मीमांसा (द्वितीय)	15.00 रु.
(8)	जिनार्चना पुष्ट (१) (तृ.सं.)	15.00 रु.
(9)	जिनार्चनापुष्ट (२)	21.00 रु.
(10)	निमित्त उपादान मीमांसा (द्वि. सं.)	9.00 रु.
(11)	धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पुष्ट-१ (द्वि. सं.)	20.00 रु.
(12)	धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पु. (२)	20.00 रु.
(13)	धर्म दर्शन विज्ञान (द्वि.सं.)	51.00 रु.
(14)	क्रांति के अग्रदूत (द्वि. सं.)	21.00 रु.
(15)	लेश्या मनोविज्ञान (द्वि. सं.)	11.00 रु.
(16)	ऋषभपुत्र भरत से भारत (द्वि. सं.)	21.00 रु.
(17)	ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि. सं.)	21.00 रु.
(18)	अनेकान्त दर्शन	20.00 रु.
(19)	कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन (द्वि. सं.)	45.00 रु.
(20)	अहिंसामृतम्	7.00 रु.
(21)	युग निर्माता ऋषभदेव	15.00 रु.
(22)	विश्वशांति के अमोध उपाय (द्वि. सं.)	10.00 रु.
(23)	मनन एवं प्रवचन (द्वि. सं.)	5.00 रु.
(24)	विनय मोक्ष द्वारा	6.00 रु.
(25)	क्षमा वीरस्य भूषणम् (द्वि. सं.)	15.00 रु.

(26) संगठन के सूत्र (द्वि. सं.)	25.00 रु.
(27) अति मानवीय शक्ति (द्वि. सं.)	31.00 रु.
(28) मंत्र विज्ञान (द्वितीय संस्करण)	25.00 रु.
(29) Philosophy of Scientific Religion	21.00 रु.
(30) दिगम्बर साधु का नग्नत्व एवं केंशलोच (एकादश संस्करण) (हिन्दी, मराठी, गुजराती)	5.00 रु.
(31) भगवान महावीर व उनका दिव्य संदेश	5.00 रु.
(32) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्टि I (पंचम संस्करण)	10.00 रु.
(33) संस्कार (हिन्दी) (एकादश सं.)	5.00 रु.
(34) विश्व विज्ञान रहस्य	100.00 रु.
(35) संस्कार (गुजराती)	-----
(36) स्वप्न विज्ञान (द्वितीय सं.)	51.00 रु.
(37) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि. सं.)	25.00 रु.
(38) आत्मोत्थानोपायः तपः	9.00 रु.
(39) तत्त्वानुचिंतन	5.00 रु.
(40) विश्व इतिहास	25.00 रु.
(41) शकुन विज्ञान	30.00 रु.
(42) संस्कार सचित्र (तृतीय संस्करण)	11.00 रु.
(43) कथा सुमन मालिका	15.00 रु.
(44) 72 कलाएँ	5.00 रु.
(45) हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों?	7.00 रु.
(46) कथा सौरभ	21.00 रु.
(47) कथा पारिजात	15.00 रु.
(48) धर्म प्रबर्तक चौबीस तीर्थकर (द्वितीय संस्करण)	11.00 रु.
(49) जीने की कला	7.00 रु.
(50) संस्कार—(वृहत्)	30.00 रु.
(51) स्वतंत्रता के सूत्र	71.00 रु.
(52) कथा पुष्टांजलि	15.00 रु.
(53) धार्मिक कुरुतियों का परिशोधन	5.00 रु.

(54) सत्य धर्म	5.00 रु.
(55) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका का पुष्टि 2 (पंचम सं.)	15.00 रु.
(56) आ.कनकनन्दी की दृष्टिमें शिक्षा	11.00 रु.
(57) अयोध्या का पौराणिक ऐतिहासिक एवं राजनैतिक विश्लेषण	11.00 रु.
(58) गुरु अर्चना	3.00 रु.
(59) दंसण मूलो घम्मो तहा संसार मूल हेतु मिछ्छतं	15.00 रु.
(60) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्टि 3 (तृ. संस्करण)	21.00 रु.
(61) संस्कार (अंग्रेजी)	5.00 रु.
(62) श्रमण संघ संहिता	30.00 रु.
(63) युग निर्माता ऋषभदेव (अंग्रेजी)	51.00 रु.
(64) पाश्वनाथका तपोपसर्ग कैवल्य धाम बिजौलिया	15.00 रु.
(65) भारतीय आर्य कौन—कहाँ से कब से कहाँ के ?	25.00 रु.
(66) ये कैसे धर्मात्मा—निर्व्वसनी—राष्ट्रसेवी	11.00 रु.
(67) विश्वधर्म सभा—समवशरण	21.00 रु.
(68) “बंधु बंधन के मूल”	61.00 रु.
(69) विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	41.00 रु.
(70) आदर्श आहार—विहार विचार	35.00 रु.
(71) उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	15.00 रु.
(72) पूजा से मोक्षःपुण्य तथा पाप भी	21.00 रु.
(73) आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियाएँ	7.00 रु.
(74) सत्य साप्य सुखामृतम्—प्रवचनसार	301.00 रु.
(75) अग्नि परीक्षा	11.00 रु.
(76) कथा चिंतामणि	11.00 रु.
(77) उठो! जागो! प्राप्त करो!!!	15.00 रु.
(78) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्)	201.00 रु.
(79) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (छोटा)	21.00 रु.
(80) संस्कार (मराठी)	10.00 रु.
(81) भ्रष्टाचार उन्मूलन	7.00 रु.

- अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग
- (82) आहारदान से अभ्युदय 9.00 रु.
- (83) बालबोध जैनधर्म 7.00 रु.
- (84) नग्न सत्य का दिग्दर्शन 15.00 रु.
- (85) ज्वलंत शंकाओं का शीतल समाधान (द्वि. सं.) 41.00 रु.
- (86) आहार दान विधि (हिन्दी मराठी) पच्चीसवा संस्करण ——
- (87) शाश्वत समस्याओंका समाधान 18.00 रु.
- (88) जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि 21.00 रु.
- (89) भाव एवं भाग्य तथा अंग विज्ञान 151.00 रु.
- (90) कथा त्रिवेणी 8.00 रु.
- (91) स्मारिका (प्रथम संगोष्ठी) 81.00 रु.
- (92) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय 101.00 रु.
- (93) Leshya Psychology 11.00 रु.
- (94) जीवन्त धर्म : सेवा धर्म 11.00 रु.
- (95) स्मारिका (द्वितीय संगोष्ठी) 51.00 रु.
- (96) भविष्य-फलविज्ञान 101.00 रु.
- (97) What Kinds of "DHARMATMA"? 21.00 रु.
(plous man)These Are 21.00 रु.
- (98) अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग 21.00 रु.
- (99) संस्कार (कन्ड़ा) 15.00 रु.
- (100) दिग्म्बर जैन साधु नग्न क्यों(उर्दू) 11.00 रु.
- (101) युग निर्माता भ. ऋषभदेव (द्वितीय संस्करण) 41.00 रु.
- (102) युग निर्माताभ. ऋषभदेव (पद्यानुवाद) 5.00 रु.
- (103) इष्टोपदेश 51.00 रु.
- (104) अपुनरागमपथ : मोक्षपथ 5.00 रु.

विशेष :-

आजीवन सदस्यता आदि ज्ञान-दान, गुप्त-दान, साहित्य विक्रिय आदि से प्राप्त धन का सदुपयोग साहित्य प्रकाशन, ज्ञान के प्रचार-प्रसार, संस्थान के उपकरण, वैज्ञानिक-यंत्रादि के लिए किया जाता है।



अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का अन्तिम

अमर सन्देश

मानव-कल्याण का आधार और अहिंसा

परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने कुथलगिरि में अमरण अनशन के २६ वें दिन ता. ८ सितम्बर को शाम के ५ बजे मराठी में मानव-कल्याण के लिए जो उपदेश दिया वह रिकार्ड किया जा चूका है। उसमें उन्होंने कहा था

“ॐ नमः सिद्धेश्यः। पंच भरत, पंच ऐरावत के भूत, भविष्यत काल सम्बन्धी भगवानों को नमस्कार हो। तीन चौबीसों भगवानों को, श्री सीमन्धर आदि तीर्थद्वार भगवानों को नमस्कार हो। ऋषभ आदि महावीर पर्यन्त १४५२ गणधर देवों को नमस्कार। चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नमस्कार हो, चौसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वरों को नमस्कार। अन्तः कृत केवलिभ्यो नमो नमः। प्रत्येक तीर्थकर के तीर्थ में होने वाले ९०-९० घोरोपसर्ग विजेता मुनीश्वरों को नमस्कार हो।

ग्यारह अंक चौदह पूर्व प्रमाण शास्त्र महा समुद्र है। उसका वर्णन करनेवाले श्रुत केवली नहीं हैं। उसके ज्ञाता केवली श्रुत केवली भी अब नहीं हैं। उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं? जिनवाणी, सरस्वती 'श्रुतदेवी' अनन्त समुद्र तुल्य हैं। इनमें कहे गये जिनधर्म को जो धारण करता है, उसका कल्याण होता है। उसको अनन्त सुख मिलता है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा नियम है। एक अक्षर ॐ है। उस एक ॐ अक्षर को धारण करके जीवों का कल्याण हुआ है। दो बन्दर लड़ते-लड़ते सम्मेदशिखर से स्वर्ग गये। सेठ सुदर्शन ने उच्च पद पाया। सप्त व्यसन-धारी अंजन चोर स्वर्ग गया है। कुत्ता-महानीच जाति का जीव जीवधरकुमार के णमोकार मन्त्र के उपदेश से देव हुआ। इतनी महिमा जैनधर्म की है किन्तु (श्वास लेते हुए) जैनियों की अपने धर्म में श्रद्धा नहीं है।

जीव और पुद्गल पृथक है

अनन्त काल से जीव, पुद्गल से भिन्न है यह सब लोग जानते हैं, पर विश्वास नहीं करते। पुद्गल भिन्न है, जीव अलग है। तुम जीव हो, पुद्गल जड़ है, इसमें ज्ञान नहीं है, ज्ञान-दर्शन-चैतन्य जीव में है। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, पुद्गल में है, दोनों के गुण, धर्म अलग-अलग हैं।

पुद्गल के पीछे पड़ने से जीव को हानि होती है। तुम जीव हो, मोहनीय कर्म जीव का घात करता है। जीव के पक्ष में पुद्गल का अहित है। पुद्गल से जीव का घात होता है। अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष जीव को ही प्राप्त होता है, पुद्गल को नहीं, सब जग इसको भूला है। जीव पंच पापों में पड़ा है। दर्शन मोहनीय के उदय ने सम्यक्त्व का घात किया है। क्या करना चाहिए? सुख प्राप्ति की इच्छा है; तो दर्शन मोहनीय का घात करो। सम्यक्त्व धारण करो। चारित्र मोह का नाश करो, संयम धारण करो। दोनों मोहनीय का नाश करो आत्मा का कल्याण करो। यह हमारा आदेश व उपदेश है। मिथ्यात्व कर्मके उदय से जीव संसार में फिरता है। मिथ्यात्व का नाश करो, सम्यक्त्व को प्राप्त करो। सम्यक्त्व क्या है? सम्यक्त्व का वर्णन समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड, गोम्मटसार आदि बड़े बड़े ग्रन्थों में है, इन पर श्रद्धा करना है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश है।

ॐ सिद्धाय नमः।

आत्म चिंतन

तुम्हे क्या करना चाहिये? दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करो, आत्म चिंतन से दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय होता है, कर्मों की निर्जरा भी आत्म-चिन्तन से होती है।

दान से, पूजा से, तीर्थयात्रा से पुण्य-बन्ध होता है। हर धर्म-कार्य से पुण्य का बन्ध होता है किन्तु कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिंतन है। केवलज्ञान का साधन आत्मचिंतन है। अनन्त कर्मों की निर्जरा का साधन आत्मचिंतन है। आत्म-चिंतन के सिवाय कर्म-निर्जरा नहीं होती है। कर्म-

निर्जरा बिना केवल ज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता। क्या करें? शास्त्रों में आत्मा का ध्यान उल्कृष्ट 6 घड़ी मध्यम 4 घड़ी और जघन्य 2 घड़ी कहा है। कम से कम 10-15 मिनट ध्यान करना चाहिये।

हमारा कहना यह है कि कम से कम 5 मिनट तो आत्म चिंतन करो। इसके बिना सम्यक्त्व नहीं होता। सम्यक्त्व के बिना संसार-भ्रमण नहीं छूटता, जन्म-जरा मरण नहीं छूटते। सम्यक्त्व तथा संयम धारण करो। सम्यक्त्व होने पर 66 सागर यहां रहोंगे।

चारित्र मोहनीय का क्षय करने के लिए संयम धारण करना चाहिये, इसके बिना चारित्र मोहनीय का क्षय नहीं होता। संयम धारण करने से डरो मत, संयम धारण किये बिना सातवां गुणस्थान नहीं होता और सातवे गुणस्थान के बिना उच्च आत्म अनुभव नहीं होता। वस्त्र धारण में सातवां गुणस्थान नहीं होता है।

सम्यक्त्व और संयम

ॐ सिद्धाय नमः। समाधि दो प्रकार की है, एक निर्विकल्प समाधि और दूसरी सविकल्प समाधि। गृहस्थ सविकल्प समाधि धारण करता है। मुनि हुए बिना निर्विकल्प समाधि नहीं होगी, अतएव निर्विकल्प समाधि पाने के लिए मुनिपद पहले धारण करो। इसके बिना निर्विकल्प समाधि कभी नहीं होगी। निर्विकल्प समाधि हो तो शुद्ध सम्यक्त्व होता है, ऐसा कुण्डकुन्द स्वामीने कहा है। आत्म अनुभव के सिवाय सम्यक्त्व नहीं है। व्यवहार सम्यक्त्व खरा (परमार्थ) नहीं है, फूल जैसे फल का कारण है, व्यवहार सम्यक्त्व, आत्म अनुभव का कारण है। आत्म-अनुभव होने पर खरा (परमार्थ) सम्यक्त्व होता है। निर्विकल्प समाधि मुनिपद धारण करने पर होती है। सातवें गुणस्थान से बारहवें पर्यन्त निर्विकल्प समाधि होती है। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है, ऐसा शास्त्र में कहा है।

यह विचार कर डरो मत कि क्या करें। संयम धारण करो। सम्यक्त्व धारण करो। इसके सिवाय कल्याण नहीं है, संयम और सम्यक्त्व के बिना

अनुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ सं.
अध्याय-1	1 अनंतदर्शी का हेतु अनेकांत-मार्ग (मोक्षमार्ग) 2 रत्नत्रय के सुमेल से ही मोक्ष, अमेल से नहीं	1 8
अध्याय-2	1 मोक्ष मार्ग में रत्नत्रय की भूमिका 2 मोक्ष मार्ग का भेदाभेद कथन 3 निश्चय व्यवहार मोक्ष मार्ग	14 18 31
अध्याय-3	1 मोक्ष मार्ग में व्यवहारनय तथा व्यवहार रत्नत्रय अभूतार्थ नहीं	35
अध्याय-4	1 मोक्ष मार्ग में सम्प्रदर्शन की भूमिका 2 सम्प्रदर्शन का लक्षण और स्वरूप 3 निःशंकित अंग का स्वरूप 4 निःकांकित अंग का लक्षण 5 निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण 6 अमूढ़ दृष्टि अंग का लक्षण 7 उपगूहन अंग का लक्षण 8 स्थितिकरण अंग का लक्षण 9 वात्सल्य अंग का लक्षण 10 प्रभावना अंग का लक्षण	39 42 44 45 47 48 49 51 52 56
अध्याय-5	1 मोक्षमार्ग में सम्प्रज्ञान की भूमिका 2 दर्शन और ज्ञान में भेद 3 दोनों में कार्य-कारण का भाव 4 समकाल में होने-वाले कार्य-कारण का दृष्टान्त 5 सम्प्रज्ञान का स्वरूप	65 69 69 70 70

कल्याण नहीं है। पुद्गल और आत्मा भिन्न है यह ठीक ठीक समझो। तुम सामान्य रूप से जानते हो। भाई-बन्धु, माता-पिता, पुद्गल से सम्बद्धित है, उनका जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव अकेला है, बाबा (भाइओ)। जीव का कोई नहीं है। जीव भव भव में अकेला जावेगा।

देवपूजन, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तप ये धर्म-कार्य है। असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य ये ६ कर्म कहे गये हैं। इनसे होने वाले पापों को क्षय करने को उत्कृष्ट धर्म-क्रिया कही है, इनसे मोक्ष नहीं है। मोक्ष किससे मिलेगा ? केवल आत्म-चिंतन से मोक्ष मिलेगा और किसी क्रिया से मोक्ष नहीं होता।

जिनवाणी का माहात्म्य

भगवान् की वाणी पर पूर्ण विश्वास करो। इसके एक-एक शब्द से मोक्ष पा सकोंगे। इस पर विश्वास करो। सत्यवाणी यही है, एक आत्म चिंतन से सब साध्य है और कुछ नहीं है। बाबा! (भाई) राज्य, सुख, सम्पत्ति, सब मिलते हैं, पर मोक्ष नहीं मिलता है। मोक्ष का कारण एक आत्म-चिंतन है। इनके बिना सद्गति नहीं होती है।

सारांश—‘धर्मस्य मूलं दया’ प्राणी का रक्षण दया है। जिन धर्म का मूल क्या है ? सत्य और अहिंसा। मुख से सब सत्य अहिंसा बोलते हैं, मुख से भोजन, भोजन कहने से क्या पेट भरता है ? भोजन किए बिना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिए। बाकी सब काम होंगे। सत्य-अहिंसा पालो। सत्य में सम्यक्त्व है। अहिंसा में दया है। किसी को कष्ट नहीं दो। यह व्यवहार की बात है। सम्यक्त्व धारण करो संयम धारण करो। इसके बिना कल्याण नहीं होता।’ (दिनांक ८-९-५५, समय ५-१० से ५-३२ शाम।)

स्वावलंबन तथा सम्यानुबन्धता जीवन विकास के प्रथम सूत्र हैं। कर्तव्य पालन के साथ साथ अधिकार भी चिर स्रोता जीवन रूपी नदी के द्वा तट हैं।

आचार्य कनकनंदीजी

6	सम्यग्ज्ञान के आठ अंग	71
अध्याय-6		
1	मोक्षमार्ग में सम्यक्चारित्र की भूमिका	75
2	सम्यक्चारित्र का स्वरूप	79
3	देश चारित्र और सकल चारित्र	82
4	व्यवहार मुनि-चारित्र का स्वरूप	83
5	हिंसा की परिभाषा	87
6	असत्य रूपी हिंसा	91
7	चोरी रूपी हिंसा	93
8	परिग्रह की सत्ता असत्ता में हिंसा—अहिंसा	95
9	मैथुन रूपी हिंसा	101
10	निश्चय चारित्र का स्वरूप	109
अध्याय-7		
1	मोक्ष की परिभाषा एवं भेद	111
अध्याय-8		
1	सार्वभौम, वैश्वीक, सर्वोदय धर्म का स्वरूप	118

दूर-दृष्टि:

जो बास्तविकता सिद्ध हुई । शांति प्रचारक मंडल के सभासद और उन्नर के रोलिना मैं गिलफोर्ड कोलेज के संस्थापकों में से एक नाथानहन्ट को जार्ज हावर्डने यह बचन दिया था कि वह उसके स्कूल के लिए एक हजार डॉलर दान स्वरूप उसी वक्त दे देगा, जैसे ही उसका छेल के शिकार पर गया हुआ जहाज तेल से लदा हुआ तट पर आ लगेगा । जनवरी 1837 में हन्टने यह बताया कि दूर-दृष्टि से उसने उस जहाज को 800 मील दूर स्थित न्यू बेडफोर्ड (MASS) के बंदरगाह पर किनारे लगते देखा है - और एक समाह बाद ही यह सिद्ध हो गया कि जहाज ठिक उसी दिन और उसी समय पर न्यूबेडफोर्ड के तट पर लगा था, जब हन्टने बताया था ।

अध्याय-1

अनंतदर्शी का हेतु अनेकांत मार्ग (मोक्षमार्ग)

वस्तु स्वरूप अनेकांत होने से उस वस्तु के स्वरूप की उपलब्धि के लिये अनेकान्तात्मक प्रणाली, पद्धति या मार्ग चाहिए। आत्मा एक चैतन्य वस्तु होने से उसमें भी अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनंत गुण विद्यमान हैं। परन्तु आत्मा के गुणों को अवरुद्ध करने वाले, विकृत करनेवाले, हास करने वाले अनंत कर्म परमाणु रूप विरोधी तत्त्व उस स्वरूप की उपलब्धि के लिए बाधक कारण बने हुए हैं। इन विरोधी कारणों का संयोग होने के कारण आत्मा के वैभाविक परिणामन है। विरोधी तत्त्वों का संचय एवं विध्वंस का कारण तथा अनंतदर्शी होने के कारण बताते हुये गुणभद्रस्वामी आत्मानुशासन में कहते हैं-

कु बोध रागादि विचेष्टितैः फलं,
त्वयापि भूयो जननादि लक्षणम् ।
प्रतीहि भव्य प्रतलोम वृत्तिभिः,
ध्रुवं फलं प्राप्त्यसि तद्विलक्षणम् ॥106॥

Thou host suffered the consequence of false knowledge, attachment and such evil acts in the shape of births and rebirths. Be assured that thou will certainly attain just the opposite result (i.e. liberation) by noble acts of an opposite character (absence of attachment, etc.).

हे भव्य ! तूने बार-बार मिथ्यात्व, ज्ञान एवं राग-द्वेषादिजनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादिरूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों—सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं, विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ ॥107॥

Pursue actively and straight, the path of continuous observance of compassion, selfcontrol, renunciation, and equanimity. This puerily leads (thee) to the highest (position) free from anxieties and beyond the power of words (to describe).

हे भव्य ! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इन्द्रिय दमन, दान और ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है-

दया-दम-त्याग-समाधि निष्ठ म्,
नय-प्रमाण प्रकृताऽज्जसाऽर्थम् ।
अधृत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः,
जिन! त्वदीयं मतमद्वितियम् ॥६॥

॥ युक्त्यानुशासनम् ॥

हे वीर जिन! आपका यह अनेकान्त रूप शासन अद्वितीय है। क्योंकि इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तत्परता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्त्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असम्भवबोधक रूप से निर्णय किया गया है। एवं इसमें समस्त एकान्तप्रवादों दर्शन मोहनीय के उदय से सर्वथा एकान्तवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनंत अनन्तदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनंत ज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण रूप प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे व्यतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग है। आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है-

सददृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति ॥३॥

(रत्नकरण श्रा०)

सददर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है इससे

विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्यज्ञान एवं कुचारित्र ही कुर्धम है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है ऐसे धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताये हैं। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते हैं कि—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः ॥१॥ तत्वार्थ सूत्र

Right belief (right) Knowledge, (right) Conduct, these (together constitute) the path to liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक (रत्नत्रयः) मोक्ष का मार्ग है।

"Self-reverence, self-knowledge and self control.

These three alone lead life to sovereign power."

आध्यात्मिक दर्शन के समर्थ प्रचारक प्रसारक कुन्दुकुन्दुस्वामी आध्यात्मिक जगत की अद्वितीय कृति समयसार में भी विमुक्ति मार्ग का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं—

जीवादी सद्हरणं सम्मतं तेसिमधिगमो णाणं।

रागादीपरिहरणं चरणं ऐसो दु मोक्षपहो ॥१६२॥

॥ समयसार ॥

सम्यग्दर्शन—

जीवादि सद्हरणं सम्मतं=जीवादि नवपदार्थानां विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रृद्धानं सम्यग्दर्शनं।

जीवादि सद्हरणं सम्मतं= जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित जो सही श्रद्धान है, वही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्ज्ञान—

तेसिमधिगमो णाणं=तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानं।

तेसिमधिगमो णाणं= उन्हीं जीवादि पदार्थों का संशय-उभय कोटिज्ञान, विमोह विपरीत एक कोटि ज्ञान, विभ्रम-अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया जाता है, ज्ञात किया जाता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यक् चारित्र –

रागादि परिहरणं चरणं—तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादि परिहारश्चारित्रं।
रागादि परिहरणं चरणं = और उन्हीं के सम्बन्ध से होने वाले जो रागादिक विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक् चारित्र कहलाता है।

व्यवहार मोक्षमार्ग –

एसो दु मोक्खपहो इत्येष व्यवहारमोक्षमार्गः।

यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

निश्चय मोक्षमार्ग –

हाँ, भूतार्थनय के द्वारा जाने हुये उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्ध-आत्मा से पृथक् रूप में ठीक—ठीक अवलोकन करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है। और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है। और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिरूप—विकल्प से रहित होते हुये अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना, निश्चय सम्यक् चारित्र है, इस प्रकार यह निश्चय मोक्षमार्ग हुआ।

नेमीचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती द्रव्यसंग्रह में निश्चय—व्यवहार मोक्षमार्ग का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार बताते हैं—

सम्मद्दंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।

व्यवहारा णिच्छायदो तत्त्वमईओ णिओ अप्पा ॥३१॥

॥ द्रव्यसंग्रह ॥

Vyavahara, from the ordinary point of view, Samaddamsana Nanam Charanam, perfect faith, knowledge and Conduct, Mokkhassa, of lliberation, Karanam, cause, jane know, Nichchayado, really. Tattiyamaio, consisting of these three. Niyo, of one's own, Appa, Soul:

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है, उसको मोक्ष का कारण जानो।

रलत्रय व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय से रलत्रय रूप परिणित आत्मा ही मोक्षमार्ग है। स्वयं आत्मा ही निश्चय से मोक्षमार्ग किस प्रकार होता है? इसका

प्रति—उत्तर देते हुये आचार्य श्री ने कहा है—

**रयणत्तयं ण वद्वइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्त्वमइयो होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥४०॥**

The three jewels (i.e. perfect faith, perfect knowledge and perfect conduct) do not exist in any other substance, excepting the soul. Therefore, the soul surely is the cause of liberation.

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रलत्रय नहीं रहता, इस कारण उस रलत्रयमयी जो आत्मा है, वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

कुन्दुकुन्दु स्वामी भी यह भेदाभेदात्मक निश्चयव्यवहारात्मक मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं।

दंसण णाण चरित्ताणि सेविदव्याणि साहुणा णिच्वं।

ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥५॥

(समयसार)

साधु को व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों को भिन्न—भिन्न समझकर नित्य—सदा ही इनकी उपासना करनी चाहिये। अपने उपयोग में लाना चाहिए, किन्तु शुद्ध निश्चय नय से वे तीनों एक शुद्धात्मा स्वरूप ही हैं। उससे भिन्न नहीं हैं ऐसा समझना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पञ्चेन्द्रियों के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र ये तीनों होते हैं।

णिज्जावगो य णाणं वादो झाणं चरित्त णावा हि।

भवसागरं तु भविया तरंति तिहि सणिवायेण ॥९००॥

(मूलाचार)

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान है और नौका चारित्र है। इन तीनों के संयोग से ही भव्य जीव भव सागर से तिर जाते हैं।

णाणं पयासओ तओ सोधयो संजमो य गुत्तियरो।

तिण्णंपि य संपजोगे होदि हु जिण सासणे मोक्खो ॥९०१॥

ज्ञान प्रकाशक है, तप शोधक है और संयम रक्षक है इन तीनों के संयोग से ही अर्थात् मिलने पर ही जिन शासन में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तवेण धीरा विद्युणंति पावं अज्जप्पजोगेण खवंति मोहं।
संखीण छुदराग दोसा उत्तमा सिद्धिगादिं पयांति ॥१०३॥

धीर मुनि तप से पाप नष्ट करते हैं। अध्यात्म योग से मोह का क्षय करते हैं। पुनः वे उत्तम पुरुष मोह रहित और राग-द्वेष रहित होते हुये सिद्ध गति प्राप्त कर लेते हैं।

मोक्षमार्ग का क्रम -

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक मार्ग ही मोक्ष मार्ग है। तीनों की पूर्णता से तत्क्षण साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे— (1) अनेक बिन्दुओं के सम्यक् संयोग से रेखा बनती है परन्तु एक बिन्दु से या सम्यक् रूप में असंयोजित अनेक बिन्दुओं से भी रेखा नहीं बनती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी तीन बिन्दुओं से मोक्षमार्ग रूपी रेखा बनती है।

(2) 100 संख्या के लिये एक तथा दो बिन्दुओं की सम्यक् समिश्टी चाहिये। तीनों अंक अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से या कोई भी दो के संयोग से भी 100 संख्या नहीं बन सकती है इसी प्रकार 100 संख्या रूप मोक्ष मार्ग के लिये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के लिये तीनों अंकों की सम्यक् संयोजना चाहिये।

बिना एक अंक स्वतन्त्र रूप से एक शून्य या दो शून्य मिलकर भी कोई विशिष्ट इकाई को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। एक अंक भी बिना दो शून्य के संयोग से कभी भी 100 संख्या नहीं बन सकती। उसी प्रकार सम्यक् दर्शन बिना ज्ञान, चारित्र, मोक्ष मार्ग के लिए अकिञ्चित्कर है। उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, रहित सम्यग्दर्शन पूर्ण मोक्षमार्ग बनाने के लिये असमर्थ हैं। जैसे 100 संख्या के लिए प्रथम संख्या एक होने पर भी एक ही सौ नहीं है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान भी पूर्ण मोक्ष मार्ग नहीं है। जब 10 के आगे एक शून्य का संयोग होता है तब 100 संख्या की पूर्णता होती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यग्चारित्र का संयोग होता है तब पूर्ण मोक्षमार्ग बनता है।

सम्त्तादो णाणं णाणादो सब्ब भाव उवलद्धी।
उवलद्धपयत्थो पुण सेयासेयं वियाणादी ॥७०५॥

(मूलाचार)

जिन वचनों की श्रद्धा का नाम सम्यक्त्व है उससे ज्ञान होता है अर्थात् उस

सम्यक्त्व से ज्ञान की शुद्धि होती है। अतः सम्यक्त्व से ही सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञान से भेद प्रभेद सहित पर्यायों सहित सर्व द्रव्यों के पदार्थों का और अस्तिकायों का बोध होता है।

शंका — सम्यग्दर्शन का विषय ज्ञान से भिन्न नहीं है तो फिर तत्पूर्वक ज्ञान कैसे हुआ ?

समाधान — ऐसा दोष आप नहीं दे सकते हैं क्योंकि ज्ञान के विपरीत अनध्यवसाय और अकिञ्चित्कर आदि स्वरूप सम्यक्त्व से ही दूर किये जाते हैं।

पुनः पदार्थों के ज्ञानी मनुष्य श्रेय पुण्य अर्थात् कर्मों को दूर करने के कारण और अश्रेय-पाप अर्थात् कर्मों को दूर करने के कारण और अश्रेय-पाप अर्थात् कर्मबन्ध के कारण अच्छी तरह से जान लेते हैं। उसी को और कहते हैं।

सेयासेय विद्ध्वू उद्धदुस्सील शीलवं होदि।
शील फलेणव्युदयं तत्तो पुण लहदि णिव्याणं ॥१०६॥

(मूलाचार)

श्रेय और अश्रेय के दाता दुःशील का नाश करके शीलवान् होते हैं पुनः उस शील के फल से अभ्युदय तथा निर्वाण पद को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रेय और उसके कारणों के तथा अश्रेय और उसके कारणों के वेत्ता मुनि दुःशील पाप क्रिया से निवृत्त होकर चारित्र से समन्वित होते हुये अठारह द्वजार शील के आधार हो जाते हैं। उसके प्रसाद से स्वर्गादि सुखों का अनुभवरूप अभ्युदय प्राप्त कर अन्त में सर्व कर्मों के अभाव से उत्पन्न हुये सुखों के अनुभवरूप निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिये सभी पूर्व ग्रन्थों से चारित्र का महात्म्य कहा गया है।

समन्त भद्र स्वामी ने भी इसी सिद्धान्त को उजागर किया है—

मोह तिमिरापहरणे दर्शन लाभादवाप्त संज्ञानः।

राग द्वेष निवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

जब मोह रूपी अन्धकार का विध्वंस हो जाता है तब सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन की उपलब्धि के बाद राग-द्वेष को निवारण करने के लिए साधु के आचरणरूप सम्यक् चारित्र को स्वीकार करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जब तक सम्यक् चारित्र का अवलम्बन नहीं लिया जाता तब तक राग-द्वेष की निवृत्ति नहीं होती।

(अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग) (अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग)

हैं। बिना राग-द्वेष की निवृत्ति के वीतरागता नहीं आती है। बिना वीतरागता केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। बिना केवलज्ञान प्राप्त किये मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा भी है—

णाणं णरस्ससारे सारो वि णरस्स होइ सम्मतं।
सम्मताओ चरणं चरणाओ ओइ णिव्वाणं ॥३१॥

ज्ञान मनुष्य का सार है। सम्यग्दर्शन भी सारभूत है। क्योंकि सम्यग्दर्शन से ज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप परिणम हो जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान से चारित्र सम्यक् चारित्र होता है। सम्यग्चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है। आचार्य कुन्दु-कुन्दु के आध्यात्मिक शास्त्ररूपी सिन्धु का मंथन करने वाले अमृत चन्द्र सूरि पुरुषार्थ सिन्धुयुपाय में भी इस सिन्धान्त को स्वीकार करते हैं। यथा—

विगतित दर्शन मोहैः

समंजस ज्ञान विदिन तत्वार्थेः।

नित्यमपि निःप्रकृष्टैः

सम्यक् चारित्रमालम्ब्यम् ॥३७॥

दर्शन मोह प्रगतित-नष्ट होने से सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि होती है जिससे तत्त्व का परिज्ञान होता है। अतएव सम्यक्श्रद्धान एवं सम्यक्ज्ञान के बाद नित्य दृढ़ भाव से सम्यक् चारित्र का अवलम्बन लेना चाहिये।

रत्नत्रय के सुमेल से ही मोक्ष, अमेल से नहीं

कोई भी कार्य तत्योग्य सम्पूर्ण कारणों के समुदाय से ही होता है। अपूर्ण कारणों से कार्य नहीं हो सकता है। जैसे एक त्रिभुज क्षेत्र बनाने के लिए तीन बाहु की नितान्त आवश्यकता होती है। एक भी बाहु का अभाव होने पर त्रिभुज क्षेत्र नहीं बन सकता है। एक सीढ़ी बनाने के लिए दो-दो लम्बी लकड़ी और मध्य की लकड़ियों की आवश्यकता होती है, उन तीनों प्रकार की लकड़ियों से एक भी लकड़ी का अभाव होने पर सीढ़ी नहीं बन सकती है। भात बनाने के लिए चावल, पानी, अग्नि की आवश्यकता होती है, उसमें किसी एक वस्तु का अभाव होने पर भात नहीं बन सकता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों के समवाय से जो आध्यात्मिक मार्ग बनता है, वही यथार्थ मोक्षमार्ग है।

(अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग) (अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग)

पृथक्-पृथक् से मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। तीनों के सम्यक् समवाय के बिना अन्य किसी भी प्रकार से मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। इसलिए अन्य प्रकार मानना सम्यग्दर्शन नहीं है। लेकिन मिथ्यादर्शन है। इस मार्ग को अन्यथा मानने से निम्न प्रकार के सात मिथ्यात्व होते हैं :— यथा

(1) केवल सम्यग्दर्शन से ही मोक्ष मानना।

(2) केवल सम्यक्ज्ञान से ही मोक्ष मानना।

(3) केवल सम्यक्चारित्र से ही मोक्ष मानना।

(4) सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से ही मोक्ष मानना।

(5) सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान से ही मोक्ष मानना।

(6) सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से ही मोक्ष मानना।

(7) सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से मोक्ष नहीं मानना।

तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य प्रवर उमास्वामी ने मोक्षमार्ग के लिए जो सूत्र का प्रतिपादन किया है उसमें “सम्यग्दर्शनज्ञान चरित्राणि” में बहुवचन है एवं “मोक्षमार्गः” में एक वचन का निर्देश किया है। यहाँ पर विशेष बहुवचन होने से विशेषण मार्ग शब्द भी बहुवचन होकर “मार्गः” होना चाहिए, परन्तु एक वचनात “मार्गः” शब्द रखे हैं। क्योंकि तीनों अलग-अलग मार्ग नहीं हैं। किन्तु तीनों मिलकर एक ही मोक्षमार्ग बनते हैं। इस सिन्धान्त का प्रतिपादन करते हुये महान् दार्शनिक अकलंकदेवस्वामी राजवार्तिक में निम्न प्रकार कहते हैं—

मार्ग स्वभावता तीनों में समान रूप से होने के कारण उस मार्ग स्वभावता की प्रधानता पर दृष्टि रखने से मार्ग शब्द में पुलिंगता और एक-वचनत्व रखने में कोई विरोध नहीं है।

शंका— “विद्या से अविद्या की निवृत्ति होती है, अविद्या की निवृत्ति से संस्कार का निरोध होता है, और संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर निरोध होने से मोक्ष होता है। इसलिए अविद्या से बन्ध और विद्या से मोक्ष होता है, यह सिन्धु होता है। ॥४६॥ पृ० ३६

शंका— ‘‘सामायिक मात्र से अनंत जीव सिन्धु हुये हैं।’’ इस आर्ष वचन में ज्ञान रूप सामायिक से स्पष्टतया सिन्धु का वर्णन है क्योंकि सामायिक ज्ञान है। इसलिए ज्ञान से मोक्ष होता है, यह अर्हत् मत में भी अविसंवाद से सिन्धु होता है। अतः जब अज्ञान से बंध और ज्ञान से मोक्ष, यह सभी वादियों को निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। तब सम्यग्दर्शनादि तीनों से मोक्ष के मार्ग की कल्पना उपयुक्त नहीं है।

शंका— एवमज्ञानद् बन्धः केवलाच्य ज्ञानान्मोक्ष ॥४८॥ पृ० ३७

इस प्रकार अज्ञान से बन्ध और ज्ञान से मोक्ष होता है ॥

समाधान – यह शंका ठीक नहीं है। रसायन के समान सम्यग्दर्शनादि तीनों में अविनाभाव सम्बन्ध है, नान्तरीयक (तीनों के साथ अविनाभाव) होने से तीनों की समग्रता के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि इसमें रसायन श्रद्धान और रसायन क्रिया का अभाव है। यदि किसी ने रसायन के ज्ञान मात्र से रसायन-फल-आरोग्य देखा हो तो बतावे ? परन्तु रसायन ज्ञान मात्र से आरोग्य फल मिलता नहीं है, न रसायन की क्रिया (अपथ्यत्यागादि) मात्र से रोगनिवृत्ति होती है। क्योंकि इसमें रसायन के आरोग्यता गुण का श्रद्धान और ज्ञान का अभाव है तथा ज्ञानपूर्वक क्रिया से रसायन का सेवन किये बिना केवल श्रद्धान मात्र से भी आरोग्यता नहीं मिल सकती। इसलिए पूर्ण फल की प्राप्ति के लिये रसायन का विश्वास, ज्ञान और उसका सेवन आवश्यक ही है। जिस प्रकार यह विवाद रहित है— उसी प्रकार दर्शन और चारित्र के अभाव में सिर्फ ज्ञान मात्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। मोक्षमार्ग के ज्ञान और तदनुरूप क्रिया के अभाव में सिर्फ श्रद्धान मात्र से मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता और न ज्ञान-श्रद्धान शून्य क्रिया मात्र से मुक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि ज्ञान-श्रद्धान रहित क्रिया निष्फल होती है।

यदि ज्ञानमात्र से ही क्वचिद् अर्थसिद्धि देखी गई हो तो कहो। परन्तु ज्ञानमात्र से अर्थ की सिद्धि दृष्टि गोचर नहीं होती है। अतः मोक्षमार्ग की कल्पना तीनों से करना ही श्रेष्ठ है। “अनन्ताः सामायिकसिद्धा” वचन भी सम्यग्दर्शनादि तीनों के मोक्षमार्ग का समर्थन करता है— क्योंकि ज्ञान-स्वभाव आत्मा के तत्त्व श्रद्धान पूर्वक ही सामायिक-समता भाव रूप चारित्र हो सकता है। समय, एकत्व, अभेद ये अनर्थान्तर (एकार्थवाची) हैं। समय, समता वा एकत्व वा अभेद ही सामायिक चारित्र है। सामायिक अर्थात् समस्त पाप योगों से निवृत्त होकर अभेद समता और वीतरागता में प्रतिष्ठित होना। यही संग्रह नय से सामायिक चारित्र कहलाता है।

‘‘हतं ज्ञानं क्रियाहीनं, हता चाज्ञानानिनां क्रिया।
धावन् किलाधको दग्धः पश्यत्रपि च पंगुलः ॥१॥
संयोगमेवेह वदन्ति तज्जा, न होक्चक्रेण रथः प्रयाति।
अन्यश्च पङ्गुश्च वने प्रविष्टो, तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ॥२॥

कहा भी है क्रियाहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है और अज्ञानियों की क्रिया निष्फल होती है। दावानल से व्याप्त वन में जिस प्रकार अन्धा इधर-उधर भाग कर भी जल जाता है, उसी प्रकार लंगड़ा देखता हुआ भी जल जाता है; क्योंकि एक चक्र से रथ नहीं चल सकता है। अतः ज्ञान और क्रिया का संयोग ही कार्यकारी है— ऐसा विद्वानों का कथन है। एक अन्धा और एक लंगड़ा दोनों मिल जायें और अन्धे के कन्धे पर लंगड़ा बैठ जाये तो दोनों का ही उद्धार हो जाय। लंगड़ा रास्ता बता कर ज्ञान का कार्य करे और अन्धा पैरों से चल कर चारित्र का कार्य करे तो दोनों का ही उद्धार हो जाय। लंगड़ा रास्ता बता कर ज्ञान का कार्य करे और अन्धा पैरों से चलकर चारित्र का कार्य करे तो दोनों ही नगर में आ सकते हैं।

जिसके मत में ज्ञान से मोक्ष होता है उसके अवस्थान का अभाव होने से उपदेश का अभाव हो जायेगा अर्थात् पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के द्वितीय क्षण में ही मोक्ष हो जायेगा क्योंकि कारण की पूर्णता के उत्तर क्षण में ही कार्य हो जाता है। उत्तर क्षण में मोक्ष हो जाने से संसार में ठहरना नहीं हो सकेगा तथा उपदेश, तीर्थ प्रवृत्ति आदि कुछ भी नहीं हो सकेंगे। जैसे—अंधकार की निवृत्ति के हेतु (होने से) दीपक के रहने पर अंधकार एक मुहूर्त भी नहीं ठहर सकता है, ऐसा सम्भव नहीं है कि दीपक भी जलता रहे और अन्धेरा भी रह जाय, उसी प्रकार आत्मा और पर स्वभाव रूप के अवबोधक ज्ञान के उत्पन्न होते ही आप्त को मोक्ष हो जायेगा और ज्ञान मोक्ष का कारण है, मोक्ष नहीं है, ऐसा भी कहना योग्य नहीं है। ज्ञान के बाद तुरन्त ही आप्त के शरीर, इन्द्रिय, वृत्ति आदि की निवृत्ति होने से प्रवचनोपदेश का अभाव हो जायेगा।

संस्कार के क्षय नहीं होने से अवस्थान होने से उपदेश होगा ऐसा कहना भी उचित नहीं है; इससे प्रतिज्ञा का विरोध होता है। जब तक संस्कारों का नाश नहीं होता है तब तक आप्त का संसार में अवस्थान होता है उसी से उपदेश होता है— ऐसा भी कहना उचित (योग्य) नहीं है— क्योंकि ज्ञान के उत्पन्न होने पर भी संस्कार के क्षय न होने से संसार में आप्त का अवस्थान रहता है, वह मुक्त नहीं होता, तब ज्ञान से मोक्ष होता है इस प्रतिज्ञा की हानि होती है। क्योंकि संसार के क्षय से मुक्ति हुई, तब ज्ञान से अपवर्ग होता है, इस प्रतिज्ञा की हानि होती है।

दोनों प्रकार से दोषों की उत्पत्ति होती है। यह विचारणीय बात है कि— संस्कारों का क्षय ज्ञान से होता है कि अन्य किसी कारण से ? यदि ज्ञान से संस्कारों का क्षय होगा, तो ज्ञान होते ही संस्कारों का क्षय भी हो जायेगा और

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

शीघ्र मुक्ति हो जाने से प्रवचनोपदेश का अभाव होगा। यदि संस्कार क्षय के लिये अन्य कारण अपेक्षित हैं तो चारित्र के सिवाय दूसरा कौन सा कारण है? यदि संस्कारों का क्षय चारित्र से होता है तो पुनः “ज्ञान से मोक्ष होता है” इस प्रतिज्ञा की हानि होगी।

अथवा ज्ञान मात्र से मोक्ष प्राप्ति स्वीकार करने पर प्रवच्यादि अनुष्ठान के अभाव का प्रसंग आयेगा। यदि ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है तो मात्र ज्ञान के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। सिर का मुँडाना, गेरुआ वस्त्र धारण करना लक्षण प्रवच्या यम-नियम, तप आदि के अभाव का प्रसंग आयेगा।

ज्ञान और वैराग्य से मुक्ति मानने पर भी अवस्थान का अभाव होने से उपदेशादि का अभाव हो जायेगा। क्योंकि तत्वज्ञान होते ही विषय विरक्ति रूप वैराग्य अवश्य ही होगा और तत्क्षण आप्त की मुक्ति हो जाने से संसार में ठहरना नहीं हो सकेगा; कुछ काल संसार में अवस्थान के बिना उपदेश का अभाव होगा।

समिष्टि रूप से रलत्रय मोक्षमार्ग है, परन्तु व्यष्टि रूप से मोक्ष मार्ग नहीं है, इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिये आ० श्री० कुन्दकुन्द देव कहते हैं—

णाणं करणं विहीणं लिंगहणं च संज्ञम विहूणं।

दंसणं रहिदो य तत्वो जो कुणइ णिरथ्यं कुणइ ॥902॥

(मूलाचार)

क्रिया रहित ज्ञान, संयम रहित वेषधारण और सम्यक्त्व रहित तप को जो करते हैं सो व्यर्थ ही करते हैं।

षट्-आवश्यक क्रिया आदि तेरह क्रिया रूप चारित्रग्रहण करना करण है। अचेलक्त्व आदि से युक्त जिन मुद्रा धारण करना लिंग है। अर्थात् तेरह प्रकार की क्रियाओं से रहित ज्ञान, इन्द्रियजय और प्राणि दयारूप संयम से रहित निर्ग्रन्थ वेष और सम्यक्त्व रहित तप जो धारण करता है, वह निर्जरा रहित (निरर्थक) कर्म ही करता है। इसलिये सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र युक्त ही मोक्ष मार्ग है।

ण हि आगमेण सिज्जदि सद्हणां जदिवि णत्थि अत्येसु।

सद्हमाणो अत्ये असंजदा वा ण णिव्वादि ॥ 237॥

(प्रवचनसार)

आगम जनित ज्ञान से, यदि श्रद्धानशून्य (श्रद्धान उत्पन्न न हुआ) हो तो सिद्धि नहीं होती, और जो आगमज्ञान के अविनाभावी श्रद्धान से भी, यदि संयम शून्य हो तो सिद्धि नहीं होती। यथा—

12

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

आगम बल से सकल पदार्थों की विस्पष्ट तर्कणा करता हुआ भी यदि जीव, सकल पदार्थों के ज्ञेयकारों के साथ मिलित होने वाला विशद एक ज्ञान, वह ज्ञान जिसका आकार है, ऐसे आत्मा को उस प्रकार से प्रतीत नहीं करता तो यथोक्त आत्मा के श्रद्धान से शून्य होने के कारण जो यथोक्त आत्मा का अनुभव नहीं करता (नहीं जानता) ऐसा वह ज्ञेयनिमग्न ज्ञान विमृढ़ जीव कैसे ज्ञानी होगा? नहीं होगा, वह अज्ञानी ही होगा। और ज्ञेयद्योतक होने पर भी आगम अज्ञानी को क्या करेगा? (आगम ज्ञेयों का प्रकाशक होने पर भी वह अज्ञानी के लिए क्या कर सकता है? इसलिए श्रद्धाशून्य वाले को आगम से सिद्धि नहीं होती। जो श्रद्धापूर्वक आगम को नहीं पढ़ते उनके आगम से सिद्धि नहीं होती।)

और सकल पदार्थों के ज्ञेयकारों के साथ मिलित होता हुआ एक ज्ञान जिसका आकार है, ऐसे आत्मा का श्रद्धान करता हुआ भी अनुभव करता (जानता) हुआ भी यदि जीव अपने में ही संयमित होकर नहीं रहता, तो वह संयत कैसे होगा? क्योंकि उसकी चिद्वृत्ति (चैतन्य की परिणति) अनादि मोह, राग, द्वेष की वासना से जनित-पर-द्रव्य में भ्रमणता के कारण स्वेच्छा-चारिणी हो रही है। और उस चिद्वृत्ति के ऐसी चिद्वृत्ति का अभाव है जो अपने में ही रहने से वासना (विषयकषाय) रहित निष्कंप और एक तत्त्व में लीन हो। (अर्थात् जिसकी चिद्वृत्ति स्व-इच्छा-चारिणी हो, और एकाग्रता रूप ध्यान से रहित हो वह असंयत है) यथोक्त आत्मतत्त्व की प्रतीतिरूप श्रद्धान या यथोक्त आत्मतत्त्व की अनुभूति रूप ज्ञान असंयत को क्या करेगा? इसलिए संयम-शून्य श्रद्धान व ज्ञान से सिद्धि नहीं होती। इससे आगमज्ञान तत्वार्थ श्रद्धान संयतत्त्व के अयुगपतत्त्व वाले के मोक्ष-मार्गत्व घटित नहीं होता।

णाणं किरिया रहियं किरिया मेत्तं च दो वि एगंता।

असमत्था दाएउं जम्ममरण दुःख मा भाई ॥68॥

(सन्नति सूत्र)

बिना ज्ञान के बाहरी धार्मिक क्रियाओं के पालन मात्र से आत्मा का कोई हित नहीं होता है। इसी प्रकार ज्ञान होने पर धार्मिक क्रियाओं का पालन एवं वैराग्य न हो, तो जीव जन्म मरण के दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता।

13

अध्याय-२

मोक्षमार्ग में गुणस्थान की भूमिका

मिथ्यात्व रूप प्रथम गुणस्थान में दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हुए भी उस गुण-स्थान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के अभाव से मोक्षमार्ग का अभाव है। जब निकट भव्यात्मा अन्तरंग-बहिरंग सम्पूर्ण कारणों को प्राप्त करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब मोक्ष मार्ग का शुभारम्भ होता है। अनादि मिथ्यादृष्टि अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व प्रकृति मिलाकर पाँच प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम से अथवा सादि मिथ्यादृष्टि उपरोक्त पाँच प्रकृति के साथ सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिलाकर ७ प्रकृतियों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से सम्यग्दृष्टि (सम्यग्दर्शनी) बनता है। उपरोक्त प्रकृतियों के उपशम से उपशम, क्षयोपशम से क्षयोपशम तथा क्षय से क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनता है। सम्यग्दर्शन के साथ-साथ मिथ्याज्ञान भी परिणमन होकर सम्यग्ज्ञान बन जाता है। अनन्तानुबंधी चतुष्क दर्शन धारी एवं चारित्रधारी होने से उसके अनुदय या अभाव से कुछ अंश में चारित्र भी युगपत् प्रगट हो जाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन होने से चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दर्शन की पूर्णता हो जाती है। उस अपेक्षा से क्षायिक सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव दृष्टि मुक्त है परन्तु जीवन मुक्त नहीं है। तेरहवें गुणस्थान में धातियाँ कर्म के अभाव से जीव अनंत चतुर्थ को प्राप्त करके जीवनमुक्त केवली हो जाते हैं। इस गुणस्थान में अनंत केवल ज्ञान होते हुए भी शरीर रहित सम्पूर्ण मोक्ष नहीं होता है। चतुर्थ गुणस्थान में दर्शन मोक्ष हो जाने के बाद भी तत्क्षण मोक्ष नहीं होता। इतना ही नहीं अधिक से अधिक तीन भव और पूर्व बद्ध आयु अपेक्षा चार भव भी ले सकता है। जिसका उल्कृष्ट काल अनेक सागरोपम होता है। तेरहवें गुणस्थान में जीवनमुक्त केवली होते हुए भी तत्क्षण मोक्ष नहीं होता है। अधिक से अधिक कुछ कम पूर्व कोटि काल प्रमाण संसार में रहने के लिए वे बाध्य होते हैं। यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि सम्यग्दर्शन की पूर्णता के बाद तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता होने पर भी मोक्ष की प्राप्ति क्यों नहीं होती है? इसका आगमोक्त सटीक उत्तर यह है कि तेरहवें गुणस्थान तक चारित्र की पूर्णता नहीं होती है। चारित्र की अपूर्णता का कारण यह है कि मन-वचन-काय के

परिस्पंदन (योग) है। जब तक केवली भगवान तीनों योग को निरोध करके निस्पंदन-स्थिर- अचल रूप से स्वयं में लीन नहीं हो जाते हैं जब तक कर्मास्व का निरोध नहीं होता है एवं चारित्र की पूर्णता नहीं होती है। प्रश्न होता है कि क्या तेरहवें गुणस्थान तक चारित्र की पूर्णता नहीं होती है? नहीं होती है। वहाँ यथाख्यात चारित्र होने पर भी परम् यथाख्यात चारित्र की पूर्णता नहीं है। जब परम्यथाख्यात चारित्र की पूर्णता हो जाती है तब उसी समय में सम्पूर्ण बन्धन विघ्वंस होकर शरीर रहित होकर सम्पूर्ण मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, परम्परा से मोक्ष का कारण है परन्तु सम्यक् चारित्र की पूर्णता साक्षात् मोक्ष के लिए कारण है। कहा भी है—

अनन्त सुख सम्पन्न एन आत्मा क्षणादपि।

नमः तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः-पुनः॥

जिससे यह आत्मा क्षणमात्र से ही अनन्त सुख सम्पन्न हो जाती है उस परम् चारित्र को मेरा पुनः-पुनः नमन हो।

इसलिए आचार्य प्रवर उमास्वामी ने मोक्षमार्ग प्रतिपादक प्रथम सूत्र में पहले सम्यग्दर्शन को अनंतर सम्यग्ज्ञान को, अनंतर सम्यक् चारित्र को रखे हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान होता है एवं सम्यग्ज्ञानपूर्वक सम्यक् चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान से मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है एवम् सम्यक् चारित्र की पूर्णता से मोक्षमार्ग की भी पूर्णता होती है। जहाँ पर सम्यक् चारित्र है वहाँ पर सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान निश्चित रूप में रहेगा ही। जहाँ पर सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान हो वहाँ सम्यक् चारित्र भजनीय है। अर्थात् वहाँ हो भी न भी हो जैसे चौदहवें गुणस्थान के अन्तिम में परम्यथाख्यातचारित्र है तो वहाँ पर क्षायिक अनंत सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान भी है। परन्तु चतुर्थगुणस्थान में सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान होने पर भी सम्यक् चारित्र नहीं है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को स्वीकार किया गया है किन्तु यहाँ निषेध कर रहे हैं। यह पूर्वापर विरोध स्व-वचन बाधित दोष से दूषित है। नहीं, वहाँ पर करणानुयोग अनुसार अनंतानुबंधी को द्विघाति मानकर उसके उपशम, क्षयोपशम, क्षय से जो आंशिक चारित्र गुण प्रगट हुआ है उस अपेक्षा वहाँ वर्णन है। उस चारित्र को सम्यक्त्वानुचरण चारित्र कहते

हैं। गुणस्थान परिषापी तथा चरणानुयोग के अनुसार चतुर्थगुणस्थान में सकलचारित्र की बात तो दूर है देशचारित्र भी नहीं है। इसीलिए यहाँ पर चारित्र का निषेध किया गया है। मोक्षशास्त्र में मोक्षमार्गप्रस्तुपक प्रथम सूत्र की व्याख्या, रलत्रय की क्रमिक उपलब्धि एवं भजनीयता बताते हुए महान् तार्किक दार्शनिक आचार्यभट्ट अकलकंदेव राजवार्तिक में निम्न प्रकार बताते हैं—

इन सम्यग्दर्शनादि में पूर्व की प्राप्ति होने पर उत्तर की प्राप्ति भजनीय होता है, ऐसा जानना चाहिये—

शंका — पूर्व का लाभ होने पर उत्तर भजनीय है। ऐसा बन नहीं सकता क्योंकि अज्ञानपूर्वक श्रद्धान का प्रसंग आता है। पूर्व सम्यग्दर्शन के लाभ में उत्तर ज्ञान का लाभ भजनीय है अर्थात् हो भी, न भी हो, ऐसा नियम उचित नहीं है क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर भी यदि ज्ञान नहीं होता तो ज्ञान के अभाव में अज्ञानपूर्वक श्रद्धान का प्रसंग आता है।

अथवा — अनुपलब्ध तत्वार्थ में श्रद्धान भी नहीं हो सकता, अविज्ञात फल रस के उपयोग के समान। जैसे— अज्ञात फल के सम्बन्ध में यह विधान नहीं किया जा सकता कि इस फल के रस से यह रोग दूर होता है, उसी प्रकार अज्ञात जीवादि तत्त्वों में श्रद्धान कैसे हो सकता है इसलिए ज्ञान के अभाव में श्रद्धान का भी अभाव हो जायेगा अर्थात् — अज्ञात तत्त्व का श्रद्धान नहीं किया जा सकता।

अथवा आत्मस्वरूप के अभाव का प्रसंग आयेगा। सम्यग्दर्शन के लाभ में ज्ञान भजनीय होने से आत्मा के अभाव का प्रसंग आयेगा अर्थात् ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव है अतः वह न्यूनाधिक रूप से सदा स्थायी गुण है उसे भजनीय नहीं कहा जा सकता। अन्यथा आत्मा का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्याज्ञान की तो निवृत्ति हो जायेगी और सम्यकज्ञान नियमतः होगा नहीं (भजनीय है) तो आत्मा के ज्ञानोपयोग का अभाव होगा, तथा लक्षण(ज्ञानोपयोग) के अभाव में लक्ष्य—आत्मा का भी अभाव होगा और आत्मा के अभाव में मोक्षमार्ग की परीक्षा भी व्यर्थ होगी।

समाधान : ऐसा कहना उचित नहीं है। यहाँ जब तक ज्ञान सम्पूर्ण न हो तब तक भजनीय कहा है। यह नय सापेक्ष वचन हैं। यहाँ पर पूर्ण ज्ञान को भजनीय कहा है न कि ज्ञान सामान्य को।

प्रश्न—ज्ञान की समाप्ति कहाँ होती है ?

उत्तर : — ज्ञान की पूर्णता श्रुतकेवली और केवली में होती हैं क्योंकि श्रुतकेवलज्ञानग्राही शब्दनय श्रुतकेवली को चाहता है अन्य ज्ञान को नहीं क्योंकि अन्य ज्ञान अपरिपूर्ण होते हैं। उस श्रुतज्ञान की अपेक्षा सम्पूर्ण द्वादशांग चतुर्दश पूर्व लक्षण श्रुतज्ञान और केवलज्ञान भजनीय है। अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर पूर्ण द्वादशांग और चतुर्दश पूर्व रूप श्रुतज्ञान और केवलज्ञान अवश्य हो ही जायेगी ऐसा नियम नहीं है इसी प्रकार पूर्व सम्यग्दर्शन के लाभ होने पर देशचारित्र, संयतासंयत चारित्र, सकल चारित्र और प्रमत्संयत से लेकर सूक्ष्म साम्पराय हो जाने पर सम्पूर्ण चारित्र अवश्य हो जायेगा, ऐसा नियम नहीं है। परन्तु सम्यक्चारित्र सहित के सम्यग्दर्शन अवश्य होगा।

प्रश्न — पूर्व सम्यग्दर्शन के और ज्ञान के लाभ होने पर चारित्र भजनीय है, ऐसा अर्थ करना चाहिए ?

उत्तर— ऐसा नहीं, आपने इस सूत्र के निर्देश को नहीं समझा।

प्रश्न — पूर्व सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान के लाभ होने पर सम्यक्चारित्र भजनीय है, ऐसा सम्बन्ध करने पर अज्ञानपूर्वक श्रद्धान का प्रसंग नहीं आता।

उत्तर — ऐसा नहीं है निर्देश का अगमक होने से सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान का लाभ होने पर चारित्र भजनीय है, यह अर्थ करना युक्त तो है तो भी उसका निर्देशक नहीं है। क्योंकि यदि दो की विवक्षा होती तो ‘पूर्वयोः’ ऐसा द्विवचनान्त पद देना चाहिये था। वार्तिक में “पूर्वस्य” यह एक वचनान्त है न कि द्विवचनान्त ‘पूर्वयोः’। अथवा—सामान्य निर्देश से उभय गति होगी ऐसा भी कहना योग्य नहीं है, यहाँ व्यवस्था विशेष की विवक्षा है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो ‘उत्तर’ इस एकवचन पद के द्वारा ज्ञान और चारित्र दो का ग्रहण होने से पूर्वोक्त दोष बना ही रहता है— इसलिए पूर्वोक्त अर्थ (पूर्व के लाभ होने पर उत्तर भजनीय) ही नय की अपेक्षा कहना चाहिये। अथवा— पूर्वक्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर क्षायिक ज्ञान भजनीय है।— क्षायिकज्ञान हो अथवा न हो यह व्याख्या कर लेनी चाहिये। अथवा— सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान ये दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं इसीलिये सहचर होने से इन दोनों में ही पूर्वत्व है, पर्वत और नारद के समान, जैसे पर्वत का ग्रहण करने से नारद का ग्रहण करने से पर्वत का

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

ग्रहण हो ही जाता है, उसी प्रकार सम्यगदर्शन और सम्यगज्ञान में एक का ग्रहण करने से दूसरे का ग्रहण हो जाता है। इसलिए सम्यगदर्शन और सम्यगज्ञान का लाभ होने पर अथवा इन दोनों में से किसी एक का लाभ होने पर भी उत्तर (चारित्र) भजनीय है, यह अर्थ भी किया जा सकता है।

मोक्ष मार्ग का भेदाभेद कथन

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतरागी, हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवान् अखिल चराचर विश्व के त्रिकालवर्ती द्रव्य गुण पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जानते हुए भी एक साथ एक समय में उनका प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं क्योंकि अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ होने के कारण सकल ज्ञेय को तो युगपत् जान लेते हैं परन्तु शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण संपूर्ण ज्ञेय कां प्रतिपादन युगपत् नहीं कर पाते हैं। इसीलिये प्रतिपादन के समय में जिसका वर्णन कर रहे हैं वह तो मुख्य हो जाता है एवं अन्य गौण हो जाते हैं। गौण होते हुए भी उनकी सत्ता रहती है। अन्य समय में जब अन्य एक विषय का प्रतिपादन करते हैं तब पूर्व प्रतिपादित विषय गौण हो जाता है तथा तत्कालिक प्रतिपादित विषय मुख्य हो जाता है। इसी प्रकार रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग होते हुए भी कभी सापेक्ष दृष्टि से सम्यगज्ञान को मोक्ष का कारण या कभी सम्यक् चारित्र को मोक्ष का कारण या कभी सम्यगदर्शन को मोक्ष का कारण कहा है इसी प्रकार जिन शासन में प्रतिपादित पाया जाता है। मूलाचार, भगवती—आराधना आदि चरणानुयोग शास्त्र में विशेषतः चारित्र को मोक्ष का कारण कहा गया है। समयसारादि आध्यात्मिक शास्त्र में सम्यगज्ञान को मोक्ष का कारण प्रतिपादित किया गया है। यथा—

अथ कथं ज्ञानमात्रादेव बन्ध निरोध इति पूर्वपक्षे कृते परिहारं ददाति।

ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी हो जाने से निर्बन्ध कैसे होता है अर्थात् बन्ध का निरोध कैसे करता है? उसका उत्तर देते हैं—

**णादूण आसवणं असुचितं च विवरीय भावं च।
दुक्खस्स कारणं पि य तदो णियतिं कुणदि जीवो॥७७॥**

(समयसार)

जब यह जीव आस्त्रवों के अशुचिपने को, जड़ता रूप विपरीतपने को और दुःख के कारणपने को जान लेता है तब अपने आप उनसे दूर रहता है।

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

क्रोधादि आस्त्रवों के कलुषतारूप अशुचिपने को जड़तारूप विपरीतपने को... जानकर उसके द्वारा स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त होने के अनन्तर सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान और सम्यक् चारित्र में एकाग्रता रूप परम् सामायिक में स्थित होकर यह जीव क्रोधादिक आस्त्रवों की निवृत्ति करता है अर्थात् अपने आप दूर रहता है। इस प्रकार ज्ञान मात्र से ही बंध का निरोध नहीं सिद्ध हो जाता है। यहां सांख्यमत सरीखा ज्ञान मात्र से बंध का निरोध माना गया है। (किन्तु वैराग्यपूर्ण ज्ञान को ज्ञान कहा गया है और उससे बंध का निरोध होता है) किं च ? हम तुमसे पूछते हैं कि आत्मा और आस्त्रव सम्बन्धी जो भेदज्ञान है वह रागादि आस्त्रवों से निवृत्त है या नहीं? यदि कहो कि निवृत्त है तब तो उस भेद ज्ञान में पानक-पीने की वस्तु ठंडाई इत्यादि के समान अभेदनय से वीतराग चारित्र और वीतराग सम्यक्त्व भी है ही। इसी प्रकार सम्यगज्ञान से ही बंध का निरोध सिद्ध हो जाता है, और यदि वह भेदज्ञान रागादि से निवृत्त नहीं है तो वह सम्यभेदज्ञान ही नहीं है।

यहाँ पर आचार्य देव ज्ञान शब्द से सम्यकदर्शन, सम्यक् चारित्र का भी ग्रहण किये हैं। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से विषय वासना से रहित संसार, शरीर, भोगों से विरक्त रूप वीतराग ज्ञान को ही ज्ञान रूप से स्वीकार किया गया है। कुंदकुंद स्वामी ने मूलाचार में कहा भी है।

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।

जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे ॥ २६८॥

(मूलाचार)

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है जिन शासन में वह ज्ञान कहा गया है।

न्याय ग्रंथ के रचियता आचार्य श्री माणिक नंदी ने इसी सत्य को उजागर किया है—

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्॥

“परीक्षामुख” ॥२॥

जिससे हित की प्राप्ति, अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि

सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

“अज्ञान निवृत्तिहीनोपादानोपेक्षाश्च फलम्।

(परीक्षामुख) (सूत्र 1 अध्याय 5)

अज्ञान की निवृत्ति अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

उपरोक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि केवल ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है और केवल अज्ञान बंध का कारण नहीं है। इस सत्य का प्रतिपादन करते हुए तार्किक चूडामणि महान् दार्शनिक संत आचार्य समन्तभद्र स्वामी “आत्ममीमांसा” में कहते हैं—

आज्ञानाद्योदृध्वं व बन्धो ज्ञेयानन्त्यात्र केवली ॥

ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्वहोऽन्यथा ॥१६॥

यदि एकान्ततः अज्ञानता से बंध होता है यदि ऐसा मान लिया जाये तब ज्ञेय अनंत होने से छद्मस्थ (12 गुणस्थान तक का असर्वज्ञ जीव) जीव अनंत ज्ञेय को नहीं जान सकता है तब वह केवली या मुक्त नहीं हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि केवल अज्ञानता ही बंध का कारण नहीं है। यदि अल्प ज्ञान से मोक्ष होता है मान लिया जाये तब अधिक ज्ञानी होने से शीघ्र मोक्ष हो जायेगा। इसलिये अज्ञानता भी मोक्ष के लिये कारण नहीं है। मोक्ष का समर्थ कारण क्या है? इसका प्रतिपादन आचार्य देव ने स्वयं निम्न प्रकार किया है—

अज्ञान्मोहतो बन्धो नाऽज्ञानादीत मोहतः ।

ज्ञानस्तोकाद्या मोक्षः स्यादमोहन्मोहिनोऽन्यथा ॥१८॥

(द्वादशांगमवृत्ति)

मोह सहित अज्ञानता से बंध होता है मोह रहित अज्ञानता से बंध नहीं होता है। मोह-दर्शन मोहनीय एवम् चारित्र मोहनीय की अपेक्षा दो प्रकार का है। दर्शन-मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय सहित अज्ञान (अल्पज्ञ) से बंध होता है। परन्तु दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय रहित अज्ञानता से बंध नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि मोह रहित कम ज्ञान से मोक्ष हो सकता है। मोह सहित ज्ञान से अथवा विपुल ज्ञान से अथवा विपुल मिथ्याज्ञान से बंध होता है।

किमथमेव मोक्षमार्ग?

क्या यही मोक्ष का मार्ग है? उसका समाधान करते हैं—

**बंधाणं च सहावं वियाणिदु अप्यणो सहावं च।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदी॥३१॥**

समयसार

बंध के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर के जो पुरुष विरक्त होता है वही कर्मों को काट सकता है।

भाव बंध मिथ्यात्व और रागादिक हैं। उनके स्वभाव को जानकर हेय-उपादेय के विषय में विपरीत मान्यता अर्थात् हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझना मिथ्यात्व कहलाता है। पंचेन्द्रियों के विषय में इष्ट और अनिष्ट का विचार होना रागादिक का स्वभाव है उसे जानकर केवल बंध स्वभाव ही को नहीं परन्तु आत्मा के अनन्त ज्ञानादि स्वभाव को जानकर द्रव्य बंध के हेतुभूत मिथ्यात्व और रागादि रूप भाव बंध हैं उनमें निर्विकल्प समाधि के बल से रंजायमान नहीं होना सो यह कर्मों का नाश करना है।

सम्यक् श्रद्धा एवं सम्यक् चारित्र रहित विपुल मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान से मोक्ष नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं मोक्ष के साधक रूप श्रमण भी नहीं हो सकता है। यह बाद कुंदकुंद स्वामी ने भावप्राभृत में सोदाहरण निम्न प्रकार वर्णन किया है—

अंगाङ्दं दस य दुष्णिं य चउदस पुव्याङ्दं सयल सुयणाणो।

पढिओ अभव्यसेणो ण भाव सवणत्तणं पत्तो॥५२॥

(भावप्राभृत)

द्वादशांग एवं चतुर्दश पूर्वात्मक सकल श्रुतज्ञान को पढ़कर भी भव्यसेन मुनि भावश्रमण नहीं हुए थे।

भव्यसेन मुनि सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण वह केवल श्रुतज्ञान को केवल शब्द से एवं अर्थ से पढ़े थे किन्तु भावात्मक रूप से अनुभव नहीं किये थे। शब्द और अर्थ से भी पूर्ण द्वादशांग का अध्ययन नहीं किये थे किन्तु एकादश अंग का पठन किये थे। द्वादशांग तथा चतुर्दश पूर्व का अध्ययन अभव्य मिथ्यादृष्टि नहीं कर सकता है। सकल श्रुतज्ञान का अध्ययन करने वाला महामुनिश्वर, श्रुतकेवली, गणधर या सौधर्मइन्द्र, सर्वार्थसिद्धि के देव आदि परीत संसारी जीव

हो सकते हैं। कहा भी है—

आध्यात्मिक शब्द ज्ञान जीव को मोक्ष प्राप्त कराने के लिये अकिञ्चत्कर हैं। इस सिद्धान्त को जैन आध्यात्मिक साधक के साथ-साथ जैनेतर साधकों ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—

**वीणाया रूप सौन्दर्य तन्त्रीवादन सौष्ठवम्।
प्रजारञ्जन मात्रं तत्र साप्राज्याय कल्पते॥५९॥**
(विवेक-चूडामणि)

**वाग्वैश्वरी शब्द ज्ञरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्दद्वुक्तये न तु मुक्तये ॥६०॥**

जिस प्रकार वीणा का रूप लावण्य तथा तंत्री को बजाने का सुन्दर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साप्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्रव्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं।

**अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥६१॥**

परम तत्त्व को यदि न जाना तो शस्त्राध्ययन निष्फल (व्यर्थ) ही है, और यदि परम तत्त्व को जान लिया तो शस्त्राध्ययन निष्फल (अनावश्यक) ही है।

**शब्दजालं महारण्यं, चित्त भ्रमण कारणम्।
अतः प्रयत्नाज्ञातव्यं तत्त्वज्ञातत्त्वमात्मनः ॥६२॥**

शब्दजाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान् वन है, इसलिए किन्हीं तत्त्वज्ञानी महात्मा से प्रयत्नपूर्वक आत्म तत्त्व को जानना चाहिए।

**अज्ञान सर्पदष्ट स्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना।
किमु वैदेश्च शास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधैः ॥६३॥**

अज्ञान रूपी सर्प से डँसे हुए को ब्रह्मज्ञान रूपी औषधि के बिना वेद से, शास्त्र से, मन्त्र से और औषध से क्या लाभ?

**न गच्छति विना पानं व्याधिरौषशब्दतः।
विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते॥६४॥**

औषधि को बिना पिये केवल औषधि-शब्द के उच्चारण मात्र से रोग नहीं जाता, इसी प्रकार अपरोक्षानुभव के बिना केवल “ब्रह्म-ब्रह्म” कहने से कोई मुक्त नहीं हो सकता।

**अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिल भूश्रियम्।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमहंति॥६५॥**

बिना शत्रुओं का वध किये और बिना सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का ऐश्वर्य प्राप्त किये, मैं राजा हूँ— ऐसा कहने से ही कोई राजा नहीं हो जाता।

आप्तोविंति खननं तथोपरिशिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृतिं।

निक्षेपः समपेक्षते न हि बहिः शब्दस्तु निर्गच्छति॥

तद्दद् ब्रह्म विदोपदे शमननध्यानादिभिर्लभ्यते।

माया कार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभिः॥६७॥

(पृथ्वी में गढ़े हुए धन को प्राप्त करने के लिये जैसे) प्रथम किसी विश्वसनीय पुरुष के कथन की, और फिर पृथ्वी को खोदने, कंकड़-पत्थर आदि को हटाने तथा (प्राप्त हुए धन को) स्वीकार करने की आवश्यकता होती है— कोरी बातों से वह बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार समस्त मायिक प्रवच्च से शून्य निर्मल आत्म तत्त्व भी ब्रह्मवित् गुरु के उपदेश तथा उसके मनन और निदिध्यासनादि से ही प्राप्त होता है, थोथी बातों से नहीं।

तस्मात्सर्वं प्रयत्ने न भवत्वन्धविमुक्तये।

स्वैरेव यतः कर्तव्यो रोगादिविव पण्डितैः॥६९॥

इसलिए रोग आदि के समान भव-बंध की निवृत्ति के लिये विद्वान् को अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए।

द्रव्य दृष्टि से शक्ति रूप से अभव्य निगोदिया जीव से लेकर छद्मस्थ अवस्था तक आत्मा शुद्ध होते हुए भी पर्याय रूप से, व्यक्त रूप से आत्म द्रव्य अशुद्ध है। उस शक्ति को व्यक्तिकरण करने के लिये जो आध्यात्मिक प्रणाली है उस को आचरण कहते हैं। आचरण शुद्धि से ही आत्मा द्रव्य में शुद्धि आती है

एवं दृव्य शुद्धि से ही आचरण में शुद्धि आती है।

कहा भी है—

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारिद्रव्यं,
मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम् ।
तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्ग,
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य ॥12॥

(प्रवचनसार तृतीयम्)

चरण द्रव्यानुसार होता है और द्रव्य चरणानुसार होता है। इस प्रकार वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं, इसलिये या तो द्रव्य को आश्रय लेकर अथवा चरण का आश्रय लेकर मुमुक्षु (ज्ञानी, मुनि) मोक्ष मार्ग में आरोहण करो।

द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धैः।

बुद्धध्वेति कर्माविरताः परेऽपि द्रव्याविरुद्धं चरणं चर्तु ॥13॥

द्रव्य की सिद्धि में चरण की सिद्धि है और चरण की सिद्धि में द्रव्य की सिद्धि है— यह जानकर, कर्मों से (पापों से) अविरत तथा अन्य भी, द्रव्य से अविरुद्ध चरण का आचरण करो अर्थात् चारित्र का पालन करो।

केवल बौद्धिक या शास्त्रीय ज्ञान से चारित्र न होने पर मोक्ष प्राप्ति तो अत्यन्त दूर है किन्तु सुगति भी प्राप्त होना दुष्कर है। कुंदकुंद स्वामी ने कहा भी है—

जहं विसय लोलएहि णाणीहि हविज्ज सहिदो मोक्षो।

तो सो सच्चइ पुत्तो दस पुब्बीओ वि किं गदो णरय ॥30॥

(शील पाहुड़)

यदि विषय कषाय से लिप्त होते हुए ज्ञान से ही मोक्ष होता है तो बताओ दश पूर्व के ज्ञाता सात्यकी पुत्र क्यों नरक गया? कहने का भावार्थ यह है कि सात्यकी का पुत्र ज्ञानी होते हुए भी विषयों में रत होने के कारण मोक्ष की प्राप्ति तो दूर ही रही सुगति भी नहीं मिली परन्तु उनको नरक जाना पड़ा। इसलिये विपुल प्रकाण्ड बौद्धिक एवं शास्त्रीय ज्ञान मोक्ष के लिये विशेष सहकारी नहीं हैं—

बहुर्यई पठियइँ मूढ़ पर, तालु सुक्कइ जेण।

एककजु अक्करु तं पढ़हु सिवपुरी गम्मइ जेण ॥

रे मूढ़! बहिरात्मन बहुत ही शास्त्र का पठन किया जिसमें तालू सूख गया परन्तु शाश्वतिक सुख या आत्मज्ञान नहीं मिला। अभी तू अन्तरात्मा होकर एक भी अक्षर पढ़ जिससे तुमको शिवपुर की गति मिले। कबीरदास ने कहा है—

पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ, पंडित भया न कोय।

झाई अक्षर प्रेम का (आत्मा) पढ़े सो पंडित होय॥

जो णवि जाणइ अप्पु परु णवि भाई चाएइ।

सो जाणउ सत्येइ सयल ण हु सिव सुक्खु लहेइ ॥96॥

(योगसार)

जो न तो परमात्मा को जानता है और न परभाव का त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रों को जान जाय, परन्तु वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं करता।

इससे विपरीत अल्पज्ञ भी चारित्र एवं भावशुद्धि के माध्यम से सम्पूर्ण कर्मबन्धनों का विध्वंस करके शुद्ध-शुद्ध नित्य निरंजन पदवी को प्राप्त किये हैं।

तुसमासं घोसंतो भाव विसुद्धो य महाणुभावो य।

णामेण य सिव भूई केवलणाणी फुंड जाओ ॥53॥

(भाव पाहुड़)

शिवभूति नामक एक अल्पज्ञ मुनि तुस मास रटते हुए सचारित्र रूप भाव विशुद्धि से सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये।

आगम में ऐसे अनेकों प्रमाण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि अनेक मुनिश्वरों को णमोकार मन्त्र भी नहीं आता था इतना ही नहीं गुरु प्रदत्त ‘मा रुसह मा तूसह’ शब्द का भी ज्ञान नहीं था तो भी निर्मल चारित्र रूप भाव विशुद्धि से श्रेणी आरोहण करके लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त कर गये, परन्तु सच्चारित्र के बिना सर्वार्थसिद्धि के देव जो कि क्षायिक सम्यक्दृष्टि, बाल-ब्रह्मचारी एवं सतत् तत्व चिंतन करने वाले 33 सागर तक आत्मचिंतन करते हुए भी मोक्ष की बात तो दूर है किन्तु देशव्रत रूप श्रावकावस्था तथा सर्व विरति रूप मुनि अवस्था को भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रतिपादन से यह सिद्धान्त प्रतिफलित नहीं होता है कि मोक्ष मार्ग में सम्यक्ज्ञान का योगदान कुछ है ही नहीं परन्तु जो ज्ञान को प्राप्त करके

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग तदनुकूल आचरण नहीं करता है उसके लिये मोक्ष प्राप्ति के निमित्तभूत यह ज्ञान विशेष कार्यकारी नहीं है। कुन्दकुन्द देव ने कहा है—

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणो वि मंद बुद्धिणो।

जे णाणगविदा हऊण विसएसु रज्जंति ॥10॥

(शील पाहुड)

जो कुपुरुष मन्द बुद्धिजन ज्ञान से गर्वित होकर विषयों में रचता, पचता है उसमें ज्ञान का कोई दोष नहीं है।

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्टदरिसीणं।

उम्मग्गं दरसीणं णाणं णिरत्थयं तेसि ॥ 23॥

॥ शील पाहुड ॥

जो विषयों में मोहित है, जो उन्मार्गगामी इष्टदर्शी द्वारा कथित मार्ग के ज्ञान के ज्ञाता होते हुए भी उनका ज्ञान निरर्थक है।

जदि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।

जदि सिकिखऊण अणयं करेदि किं तस्स सिक्खफलम्॥

हस्त में दीपक होते हुए भी और कुएँ को देखते हुए भी जो कुएँ में गिरता है उसके हस्त में स्थित दीपक क्या कर सकता है ? क्या गिरते हुए मनुष्य को दीपक बचा सकता है ? कदापि नहीं। अथवा दीपक हस्त मनुष्य कुएँ में गिरने पर दीपक का कोई दोष होगा ? कदापि नहीं होगा। इसी प्रकार जो ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके भी ज्ञानानुसार आचरण नहीं करता, उसकी शिक्षा के ज्ञान का क्या फल रहा ? अर्थात् कोई नहीं।

बहुगंपि सुदमधदिं किं काहदि अजाण माणस्स।

दीव विसेसो अंधे णाण विसेसो वि तह तस्स॥

जो आत्मज्ञान से रहित है वह बहुश्रुत का अध्ययन करने पर भी क्या करेगा ? जैसे—अन्धे के लिए दीपक कोई विशेष कार्यकारी नहीं है उसी प्रकार वीतराग चारित्र अविनाभावी वीतराग ज्ञान या चारित्र सम्पन्न ज्ञान रहित उसका विपुल श्रुतज्ञान क्या करेगा ?

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यो विशुद्धो भाति निर्वृत्तः।

अंगारवत् खलो दीप्ते मली वा भस्म वा भवेत् ॥

आत्मानुशासन ॥ 76 ॥

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग तदनुकूल शास्त्र रूप अग्नि में प्रविष्ट हुआ भव्य जीव तो मणि के समान विशुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त करता हुआ शोभायमान होता है। किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव (अभव्य) उस शास्त्र रूप अग्नि में प्रदीप्त होकर मलिन व भस्म स्वरूप हो जाता है।

यस्य नास्ति विवेकस्तु केवलं यो बहुश्रुतः।

न स जानाति शास्त्रार्थान् दर्वी पाक रसानिव॥

जो हिताहित विवेक से रहित होकर बहुश्रुतज्ञ है वह शास्त्रों के रहस्य को नहीं जान सकता है। जैसे—चम्चा विभिन्न रस युक्त व्यञ्जनों से लिप्त होने पर भी रस को नहीं जान सकता है। इसीलिये कौटिल्य चाणक्य ने भी कहा है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्र तस्य करेति किम्।

लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

जिसकी स्वयं की प्रज्ञा शक्ति नहीं है उसके लिए शास्त्र क्या कर सकता है ? जिसकी दृष्टि शक्ति नहीं है उसके लिये दर्पण क्या करता है ? अर्थात् अंधा व्यक्ति स्वच्छ से स्वच्छ बड़े से बड़े दर्पण में अपना मुख नहीं देख सकता है, उसी प्रकार विषयान्ध व्यक्ति आत्मा का दर्शन नहीं कर सकता है क्योंकि विषय वासना रूपी घन परदा उनके प्रज्ञारूप चक्षु को आवृत्त करके रखती है।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धी कृते क्षणः।

चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित् ॥35॥

॥आत्मानुशासन॥

जिसके नेत्र इन्द्रिय विषयों के द्वारा अन्धे कर दिये गये हैं अर्थात् विषयों में मुग्ध रहने से जिसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो चुकी है ऐसा यह प्राणी उस प्रसिद्ध अंधे से भी अधिक अन्धा है, क्योंकि अन्धा प्राणी तो केवल चक्षु के ही द्वारा नहीं जान पाता है, परन्तु वह विषयान्ध मनुष्य इन्द्रियों और मन आदि में से किसी के द्वारा भी वस्तु स्वरूप को नहीं जान पाता है।

उपरोक्त कथन एवं उदाहरणों से यह नहीं समझना चाहिए कि सम्पर्कज्ञान मोक्षमार्ग के लिये बाधक है अथवा ज्ञानी लोग विषय वासना में रत रहते हैं। परन्तु उसका रहस्य यह है कि ज्ञान को प्राप्त करके भी यदि तदनुकूल आचरण नहीं करेंगे तथा राग द्वेषात्मक परिणमन करेंगे तो निश्चित रूप से कर्म बन्ध होगा ही। “णाणं पयासणं” ज्ञान तो प्रकाश स्वरूप है जैसे अन्धकार में कुछ दिखाई नहीं

देता है किन्तु प्रकाश होने पर सर्प काँटा, धन, विष, सम्पत्ति आदि दिखाई देते हैं। परन्तु कोई प्रकाश से विष को पहिचानकर भी विषपान करेगा तो प्रकाश विष पान करने से रोकेगा नहीं तथा प्रकाश में भी विषपान करने से विष का परिणाम तो होवेगा ही। उसी प्रकार ज्ञान होते हुए भी पर वस्तु के प्रति आकर्षण—विकर्षण होने पर कर्मास्त्रव एवं बन्ध होगा जिससे संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा। परन्तु ज्ञान में एवं चारित्र में विरोध नहीं है किन्तु उत्तरोत्तर ज्ञान वृद्धि होने पर चारित्र में विशुद्धता आती है जिससे चारित्र भी उत्तरोत्तर वर्धमान होता है।

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहि णिदिठ्यो।

णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणसंति ॥२४॥

(शील पाहुड़)

अनन्त केवली बुद्धों द्वारा निर्दिष्ट चारित्र एवं ज्ञान का परस्पर कोई विरोध नहीं है। अपरज्य शील के बिना विषय सुख से ज्ञान का विनाश हो जाता है।

णाणं णाऊण णरा कोई विसयाइ भाव संसत्ता।

हिंडति चदुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढा ॥७॥

कुछ मनुष्य ज्ञान को जानते हुए भी विषय वासना से भावित होकर विषयों में विमोहित मूढ़ होकर चर्तुगति रूप संसार में परिभ्रमण करते हैं।

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोरणं।

सब्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारूणं होई॥२१॥

(शीलपाहुड़)

स्थावर, जंगम विष से भी विषय रूपी विष अत्यन्त भयंकर है। विषय रूपी विष से सुगति, मोक्षगति आदि विनाश हो जाती है। विषय रूपी विष अत्यन्त दारूण है।

वारि एकम्मि य जम्मे सरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।

विसयविसपरिहरणं भमंति संसार कांतारे ॥२२॥

(शीलपाहुड़)

विष पान से एक बार मरण करके अन्य गति में जीव उत्पन्न होता है।

परन्तु विषय रूपी विष सेवन से संसार रूपी वन में अनेक बार परिभ्रमण करना पड़ता है।

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसण विहणं।

संजमहीणो य तवो जई चरइ णिरत्थयं सब्वं ॥५॥

(शीलपाहुड़)

चारित्र हीन ज्ञान, दर्शन विहीन मुनि वेषादि धारण, इन्द्रिय मन एवं प्राणी संयम रहित तप जो आचरण करता है वह सर्व निरर्थक होता है।

उपरोक्त नानाविध उदाहरण एवं कथन प्रणालियों से यह सिद्ध होता है कि रलत्रय परस्पर विरोधी या धातक नहीं है परन्तु परस्पर अनुपूरक—परिपूरक तथा सहकारी है। क्योंकि सम्यग्दर्शन से ज्ञान में सम्यक् पना आता है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान से चारित्र में सम्यक्त्वपना आता है तथा चारित्र दृढ़ एवं उत्तरोत्तर विशुद्ध होता है। सम्यग्दर्शन तो प्रासाद (भवन) के लिए नींव के समान आधारशिला है। बिना सम्यग्दर्शन के रलत्रय रूप प्रासाद नहीं टिक सकता है। नींव के बिना प्रासाद नहीं टिकने पर भी नींव ही प्रासाद नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना रलत्रयरूप महल नहीं टिकने पर भी सम्यग्दर्शन ही रलत्रय नहीं है।

सम्यग्ज्ञान दो कमरे के बीच स्थित देहली के ऊपर रखा हुआ दीपक के सदृश है। जैसे वह दीपक दोनों कमरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी दीपक सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चारित्र को प्रकाशित करता है। प्रकाश से हिताहित का परिज्ञान होते हुए प्रकाश स्वयं हित वस्तु को ग्रहण कर अहित वस्तु का परिहार नहीं कर सकता है। श्रद्धा से मानकर ज्ञान से जानकर एवं आचरण से माना हुआ, जाना हुआ कार्य का सम्पादन होता है। अर्थात् विश्वासनीय एवं ज्ञात लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ के माध्यम से लक्ष्य बिन्दु में पहुँचकर लक्ष्य की पूर्ति कर लेते हैं। कुन्द-कुन्द स्वामीने चारित्र पाहुड़ में कहा भी है—

जं जाणइ तं णाणं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।

णाणस्स पिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं ॥३॥

(चारित्रपाहुड़)

जो जानता है वह ज्ञान है जो देखता है वह दर्शन है, ज्ञान एवं दर्शन

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त समापन या समायोग में चारित्र होता है।

ए तिष्ण वि भावा हंवति जीवस्य अक्षयामेया।
तिष्णहि वि सोहणत्ये जिण भणियं दुवियं चारित्तं ॥४॥

(चारित्र पाहुड़)

यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप तीन भाव जीव के अक्षय, अनन्त, स्वभाव स्वरूप हैं। इन तीनों भावों की विशुद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान ने व्यवहार एवं निश्चय दो प्रकार चारित्र कहे हैं।

सम्पत्त चरण शुद्धा संजम चरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढ़ दिट्ठी अचिरे पावंति निवाणं ॥३॥

(चारित्र प्राभृत)

सम्यक्त्व सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषों से रहित सम्यक्त्व गुण से अलंकृत जो होता है वह सम्यक् चारित्र से विशुद्ध होता है। यह सम्यक्त्वाचरण चारित्र चतुर्थ गुणस्थान में होता है। चरणानुयोग अनुसार चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र नहीं होने पर भी अष्ट मद, शंकादि, अष्ट दोष, षट् अनायतन आदि का त्याग एवं निशंकआदि अष्ट दोष अंग, संवेगादि अष्ट गुणादि सहित होना ही इस गुणस्थान सम्बन्धी चारित्र है। इसको ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं। सम्यक्त्वाचरण सहित जो महामुनिश्वरों का महाब्रतादि रूप संयमाचरण से अत्यन्त प्रकृष्ट रूप से सर्वलोक सुप्रसिद्ध है। ऐसे महान् चारित्र के साधक निर्वाण को स्वल्प काल में ही प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर चारित्र मुख्य होने पर भी सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की समग्रता भी कहा गया है।

सीलं रक्खताणं दंसण-सुद्धाण दिठ चरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्त चित्ताणं ॥१२॥

(शीलपाहुड़)

जो शील के संरक्षक हैं दर्शन से विशुद्ध हैं दृढ़ चारित्र निष्ठ हैं विषय वासना से विरक्त चित्त वाला है उसके लिये निर्वाण ध्रुव सुनिश्चित है।

सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥२०॥

(शीलपाहुड़)

शील, विषय कषाय का परम शत्रु है अर्थात् शील पालने से शील के

प्रभाव से विषय कषायरूप शत्रु विध्वंस हो जाते हैं। शील मोक्ष महल के लिये सोपान स्वरूप है।

निश्चय व्यवहार मोक्ष मार्ग : -

मोक्ष कार्य एक होने के कारण उसके कारण भी रलत्रयात्मक एक ही है। परन्तु पात्र की अपेक्षा रलत्रय व्यवहार और निश्चय भेद से दो प्रकार के हैं। एक निचली भूमिका में स्थित साधक अपेक्षा भेदात्मक रलत्रय, व्यवहार रलत्रय या व्यवहार मोक्षमार्ग है। उपरितन भूमिका स्थित साधक अपेक्षा निश्चय रलत्रय या अभेद रलत्रय या निश्चय मोक्षमार्ग है। निरतिशय सप्तम गुणस्थान या श्रेणी आरुढ़ से पहले—पहले गुणस्थान तक भेदात्मक या व्यवहार रलत्रय है। सातिशय सप्तम गुणस्थान या श्रेणी आरोहण के समय महामुनियों को निश्चय रलत्रय या अभेद रलत्रय होता है। इसी प्रकार मोक्षमार्ग निश्चय एवम् व्यवहार की अपेक्षा के दो भेद हैं—

निश्चय व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्ग द्विधा स्थितः।

तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनं ॥२॥

(तत्वार्थ सार अधिकार ४ पृ० ५८)

निश्चय एवं व्यवहार रूप दो प्रकार के मोक्षमार्ग हैं। निश्चय मोक्षमार्ग साध्य स्वरूप है एवं व्यवहार मोक्षमार्ग साधन स्वरूप है।

साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती है। समर्थ साधन ही परिवर्तित होकर साध्यरूप हो जाता है। जैसे बीज साधन है तो वृक्ष साध्य है। बिना बीज के वृक्ष सम्भव नहीं है। उसी प्रकार बिना व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग सम्भव नहीं है; इसीलिये व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है और निश्चय मोक्षमार्ग कार्य है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण शिव मग सो दुविध विचारो।

जो सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो ॥१॥

(छहाला तृतीय ढाल)

सम्पदंसण णाणं चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे।

व्यवहारा णिछ्यदो तत्त्विय मझओ णिओ अप्पा ॥३९॥

(तृतीय अधिकार वृहद् द्रव्य संग्रह)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों के समुदाय को मोक्ष

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान और चारित्रस्वरूप जो निजात्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

“वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत षड् द्रव्य पञ्चास्तिकाय सप्त तत्त्व, नव प्रदार्थ सम्यक् त्रद्वान ज्ञान व्रतानुष्ठान विकल्पे व्यवहार मोक्षमार्गः। निजनिरञ्जन शुद्धात्म, तत्त्व, सम्यक्, त्रद्वान ज्ञानानुचरणैकाग्रय परिणति रूपो निश्चय मोक्षमार्गः।” अथवा “धातुपाषणेऽपिनवत्साधको व्यवहार मोक्षमार्गः। सुवर्ण स्थानीय निर्विकार स्वोपलब्धि साध्यरूपो निश्चय मोक्षमार्गः।”

श्री वीतराग सर्वज्ञ से कहे हुए जो छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सप्त तत्त्व और नव पदार्थ हैं इनका भले प्रकार त्रद्वान करना, जानना और व्रत आदि का आचरण करना इत्यादि विकल्प जो है सो तो व्यवहार मोक्षमार्ग है और जो अपने निरंजन शुद्ध आत्म तत्त्व का सम्यक् त्रद्वान, ज्ञान तथा आचरण में एकाग्र परिणति रूप है वह निश्चय मोक्षमार्ग है। अथवा धातु पाषण के विषय में अग्नि के सदृश्य जो साधक है वह तो व्यवहार मोक्षमार्ग है तथा सुवर्ण के स्थानापन्न निर्विकार जो निज आत्मा है उसके स्वरूप की प्राप्ति रूप जो साध्य है उस स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग है।

भेद रलत्रयात्मक व्यवहार मोक्षमार्ग साधक होता है। अभेदरलत्रयात्मक निश्चय मोक्षमार्ग साध्य होता है। सुवर्ण और सुवर्ण पाषण के समान साध्य साधक भाव है। जैसे सुवर्ण पाषण ही अग्नि आदि से तपते—तपते विशुद्ध होते—होते शुद्ध सुवर्ण रूप परिणत हो जाता है उसी प्रकार व्यवहार रलत्रय ही आध्यात्मिक साधना से शुद्ध होते—होते अभेदरलत्रयात्मक रूप परिणत कर लेता है। इससे सिद्ध होता है कि बिना सुवर्ण पाषण से शुद्ध सुवर्ण की उपलब्धि असंभव है। उसी प्रकार व्यवहार रलत्रय बिना निश्चयरलत्रय की उपलब्धि भी असंभव है। व्यवहार रलत्रय या शुभोपयोग से पापकर्मों का संवर होता है। सातिशय पुण्यकर्म का आस्रव होता है तथा आस्रव से भी अनंत गुणित कर्म निर्जरा होती है इसलिये शुभ-परिणामात्मक भेदरलत्रय भी संसार विच्छेद के लिये कारण होता है। जैनागम के प्रसिद्ध सिद्धांत शास्त्र जयधवला में कलिकाल सर्वज्ञ, तार्किक चूडामणि आचार्य वीरसेन स्वामी इस सिद्धांत को सिद्ध करते हुए जयधवला के प्रथम चरण में ही कहते हैं—

“सुह-सुद्ध परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो।”

(जयधवला पु० १ पृ० ५)

शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का

क्षय हो ही नहीं सकता है।

शंका— आध्यात्मिक शास्त्र में तो व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा गया है इसलिये व्यवहार नयाश्रित, व्यवहारचारित्र अभूतार्थ है इसलिये व्यवहार रलत्रय भी मोक्षमार्ग के लिये अभूतार्थ हैं क्योंकि कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा है—
व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥१३॥

(स्थमसार)

व्यवहार अभूतार्थ है अर्थात् विशेषता की दृष्टि में रखकर विषमता को पैदा करने वाला है किन्तु शुद्धनय भूतार्थ है क्योंकि वह समता को अपनाकर एकत्व को लाता है। समता को अपनाकर ही सम्यग्दृष्टि अर्थात् समीचीनतया देखने वाला होता है।

समाधान — ठीक है। आपका कहना भी नय सापेक्ष से यथार्थ है परन्तु व्यवहार नय एवं व्यवहार नयाश्रित व्यवहार रलत्रय किसके लिये, कब अभूतार्थ है वह भी अनेकांत के प्रकाश से जान लेना चाहिये। इस गाथा की टीका करते हुए आध्यात्मिक ग्रन्थियों को सुलझाने वाले जयसेनाचार्य कहते हैं कि—

‘व्यवहारो अभूदत्थो भूदत्थोदेसिदो’ व्यवहार नय अभूतार्थ भी है और भूतार्थ भी है, इसे दो प्रकार का कहा गया है। केवल व्यवहार नय ही दो प्रकार का नहीं, किन्तु सुद्धणओ निश्चय भी शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय के भेद से दो प्रकार है, ऐसा गाथा में आये हुए ‘दु’ शब्द से प्रकट होता है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जैसे कोई ग्रामीण पुरुष तो कीचड़ सहित तालाब आदि का जल पी लेता है किन्तु नागरिक विवेकी पुरुष तो उसमें कतक फल निर्मली डालकर उसे निर्मल बनाकर पीता है, उसी प्रकार स्वसंवेदन ज्ञान रूप भेद भावना से रहित जो मनुष्य है वह तो मिथ्यात्व और रागादि रूप विभाग परिणाम सहित ही आत्मा का अनुभव करता है। किन्तु जो सम्यग्दृष्टि (सयंत) मनुष्य होता है वह तो अभेद रलत्रय लक्षण निर्विकल्प समाधि के बल से कतक स्थानीय निश्चयनय का आश्रय लेकर शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है।

भूतार्थनय का आश्रय करने वाला सामान्य जीव नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि से लेकर निरतिशय सप्तम गुणस्थान तक निश्चयनय को जानते हुए भी, मानते हुए भी निश्चयनय से प्रतिपादित भावानुकूल वह परिणमन आचरण

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनहीं कर सकता है। निश्चयनय में प्रतिपादित भावानुकूल श्रेणी आरोहण करने वाले महामुनिश्वर ही परिणमन कर सकते हैं। इसीलिए निश्चयनय द्वारा प्रतिपादित अभेदरत्नत्रय प्राथमिक साधकों के लिए श्रद्धा का विषय होने पर भी आचरण का विषय नहीं है। परन्तु व्यवहार नय द्वारा प्रतिपादित व्यवहार रत्नत्रय प्राथमिक साधक के लिए आचरण करने योग्य है तथा रत्नत्रय प्रयोजनवान है। परन्तु श्रेणी आरोहण करने वाले मुनिश्वरों के लिए व्यवहार रत्नत्रय प्रयोजनीय नहीं है। समयसार गाथा में स्पष्टीकरण करते हैं कि निर्विकल्प समाधि में निरत होकर रहने वाले सम्यग्दृष्टियों को भूतार्थ स्वरूप निश्चयनय ही प्रयोजनवान् हो, ऐसा नहीं है। किन्तु उन्हीं निर्विकल्प-समाधिरत्नों में किन्हीं-किन्हीं को कभी सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व, विषय-कथाय दुर्घार्ण को दूर करने के लिए व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् होता है। जैसे किसी को शुद्ध सोलहवानी के सुवर्ण का लाभ न हो तो नीचे के ही अर्थात् पन्द्रह, चौहदहवानी का सोना भी सम्मत हो जाता है। ऐसा कहते हैं—

सुधो सुधादेसो णादब्बो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे द्विदाभावे ॥14॥

(समयसार)

शुद्ध निश्चयनय शुद्ध-द्रव्य का कथन करनेवाला है, वह परम शुद्धता की भवना में लगे हुए पुरुषों के द्वारा अंगीकार करने योग्य है। परन्तु जो पुरुष अशुद्ध व नीचे की अवस्था में स्थिर हैं उनके लिए व्यवहार नय ही कार्यकारी है।

“सुद्धो सुधादेसो” शुद्ध निश्चयनय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है “णादब्बो परम भावदरसीहिं” वह शुद्धता को प्राप्त हुए आत्मदर्शियों के द्वारा जानने-भावने अर्थात् अनुभव करने योग्य है। क्योंकि वह सोलहवानी स्वर्ण के समान अभेदरत्नत्रय स्वरूप समाधिकाल में प्रयोजनवान् होता है। “ववहार देसिदो” किन्तु व्यवहार अर्थात् विकल्प भेद अथवा पर्याय के द्वारा कहा गया जो व्यवहारनय है वह पुनः पन्द्रह, चौदह आदि वानी के स्वर्ण लाभ के समान उन लोगों के लिए प्रयोजनवान् है। ‘जे दु अपरमे द्विदा भावे’ अशुद्ध रूप शुभोपयोग में जो कि असंयत सम्यग्दृष्टि अथवा श्रावक की अपेक्षा तो सराग सम्यग्दृष्टि लक्षणवाला है और प्रमत्त अप्रमत्त संयत लोगों की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षणवाला है ऐसे शुभोपयोग रूप जीव पदार्थ में स्थित हैं।

अध्याय-3

मोक्षमार्ग में व्यवहारनय तथा व्यवहार रत्नत्रय अभूतार्थ नहीं

ण च ववहारणओ चप्पलो; तत्तो ववहाराणुसारिसिस्साणं पउत्तिदंसणादो। जो बहुजीवाणुगगहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सदव्वोत्तिमणेणावहारिय गोदमथेरेण मंगलं तथ्य कयं।

यदि कहा जाय कि व्यवहारनय असत्य है सो भी ठीक नहीं हैं क्योंकि उससे व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहारनय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिए ऐसा मन में निश्चय करके गौतम स्थविर ने चौबीस अनुयोग द्वारों के आदि में मंगल किया है।

पुण्ण कम्बं धृथीणं देसव्याणं मंगलकरणं जुत्तं ण मुणीणं कम्कखयकंकखुवार्णमदिं नवोत्तुं जुतं, पुण्णबंध हेउत्तं पडि विसेसाभावदो, मंगलस्सेव सरागसंजमस्स वि परिच्चागप्पसंगादो। ण च एवं, तेण संजमपरिच्चागप्पसंगभावेण णिव्वुइगमणा भावप्पसंगादो। सरागसंजमो गुणसेढिण्जराए कारणं-तेण बंधादो मोक्खो असंख्यगुणो त्ति सरागसंजमे मुणीणं वट्टुणं जुत्तमिदि ण पच्चवट्टाणं कायव्वं; अरहंतणमोक्कारो संपहियबंधादो असंख्येज्जगुणकम्कखयकारओ त्ति तथ्य वि मुणीणं पवुत्तिप्पसंगादो।

यदि कहा जाय कि पुण्यकर्म के बाँधने के इच्छुक देश-व्रतियों को मंगल करना युक्त है किन्तु कर्मों के क्षय के इच्छुक मुनियों को मंगल करना युक्त नहीं है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्यबन्ध के कारणों के प्रति उन दोनों में कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् पुण्यबन्ध के कारणभूत कामों को जैसे देशव्रती श्रावक करते हैं वैसे ही मुनि भी करते हैं, मुनि के लिए एकान्त से निषेध नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो जिस प्रकार मुनियों को मंगल के परित्याग के लिये यह कहा जा रहा है उसी प्रकार उनके सरागसंयम के भी परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि देशव्रत के समान सरागसंयम भी पुण्यबन्ध का कारण है।

यदि कहा जाय कि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है तो होओ, सो भी बात नहीं है। क्योंकि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होने से उनके मुक्ति गमन के अभाव का भी प्रसंग प्राप्त होता है।

यदि कहा जाय कि सरागसंयम गुण श्रेणी निर्जरा का कारण है क्योंकि उससे बन्ध की अपेक्षा मोक्ष अर्थात् कर्मों की निर्जरा असंख्यात् गुणी होती है, अतः सरागसंयम में मुनियों की प्रवृत्ति का होना योग्य है, सो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिये, क्योंकि अरहंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यात् गुणी कर्म निर्जरा का कारण है, इसीलिये सरागसंयम के समान उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। जयधवला पुस्तक 1 पृष्ठ 7-8

सब्वथ्य विसयववहारस्स अप्पमाणपुरस्सरत्पसंगादो। ण च अप्पमाणपुरस्सरो ववहारो सच्चत्तमल्लियः। ण च एवं, बाहविवज्ज्यसब्वव्यवहाराणं सच्चत्तुवलं भादो।

आदि विषय व्यवहार को अप्रमाणपुरस्सरत्व का प्रसंग प्राप्त होता है, और अप्रमाणपूर्वक होने वाला व्यवहार सत्यता को प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि कहा जाय कि सभी व्यवहार अप्रमाणपूर्वक होने से असत्य मान लिये जायें, सो भी बात नहीं है। क्योंकि जो व्यवहार बाधारहित होते हैं उन सब में सत्यता पाई जाती है। (जय ध्वल पु० 1 पृ० 41)

भगवान् ध्यानं तावन्मोक्षमार्गभूतम्। मोक्षार्थिनां पुरुषेण पुण्यबन्धकारणत्वाद्व्रतानि त्याज्यानि भवन्ति, भवभिदः पुर्नध्यानसामग्रीकारणानि तपः श्रुतव्रतानि व्याख्यातानि, तत् कथं घटत इति। तत्रोत्तरं दीयते—व्रतान्येव केवलानि त्याज्यान्येवं न किन्तु पापबन्धकारणानि हिंसादिविकल्परूपाणी यान्यव्रतानि तान्यपि त्याज्यानि। तथा चोक्तं पूज्यपादस्वामिभिः— “अपुण्यमव्रतेः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः। अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्। किंत्वव्रतानि पूर्वपरित्यता ततश्च व्रतेषु तनिष्ठो भूत्वा निर्विकल्प समाधिरूपं परमात्मपदं प्राप्य पश्चादेक देशव्रतान्यपि त्यजेत्। तदव्युक्तं तैरवे—अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः। त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः: ॥1॥”

यहाँ शिष्य शंका करता है कि आचार्य भगवान्! ध्यान तो मोक्ष का मार्गभूत है अर्थात् मोक्ष का कारण है और जो मोक्ष को चाहने वाला पुरुष उसको पुण्यबन्ध के कारण होने से ब्रत में त्यागने योग्य है अर्थात् व्रतों से पुण्य का बंध

होता है; और पुण्यबन्ध संसार का कारण है इसलिये मोक्षार्थी व्रतों का त्याग करता है और अपने तप श्रुत और व्रतों को ध्यान की पूर्णता के कारण कहे, सो यह आपका कथन कैसे घटता है (सिद्ध होता है) अब इस शंका का उत्तर दिया जाता है कि, केवल व्रत ही त्यागने योग्य है ऐसा नहीं किन्तु पाप बन्ध का कारण जो हिंसा आदि भेंटों के धारण अव्रत हैं वे भी त्यागने योग्य हैं। सो ही पूज्यपादस्वामी ने कहा है कि, हिंसा आदि अव्रतों से पाप का बंध होता है और अहिंसादि व्रतों से पुण्य का बंध होता है; तथा मोक्ष जो है वह पाप व पुण्य इन दोनों के नाश से होता है; इस कारण मोक्ष को चाहने वाला पुरुष जैसे अव्रतों का त्याग करता है; वैसे ही अहिंसादि व्रतों का भी त्याग करे।

विशेष यह है कि मोक्षार्थी पुरुष पहले अव्रतों का त्याग करके पश्चात् व्रतों का धारक होकर निर्विकल्प—समाधि (ध्यान) रूप आत्मा के परमपद को प्राप्त होकर तदनन्तर एकदेश व्रतों का भी त्याग कर देता है। यह भी उन्हीं श्री पूज्यपादस्वामी ने समाधिशतक में कहा है कि ‘‘मोक्ष को चाहने वाला पुरुष अव्रतों का त्याग करके व्रतों में स्थित होकर आत्मा के परम पद को पावे और उस आत्मा के परम पद को प्राप्त होकर उन व्रतों का भी त्याग करे।

इस पूर्व कथन में विशेष यह है कि मन—वचन और काय की गुप्तिरूप और निज शुद्ध आत्मा के ज्ञानस्वरूप जो निर्विकल्प ध्यान है उसमें व्यवहार रूप जो एक देश व्रत है उनका त्याग किया है और जो सम्पूर्ण शुभ तथा अशुभ को निवृत्तिरूप निश्चयव्रत है उनका स्वीकार ही किया गया है और त्याग नहीं किया गया है। प्रसिद्ध जो अहिंसादि महाव्रत हैं वे एकदेशव्रत कैसे हो सकते हैं? ऐसी शंका करो तो समाधान उत्तर यह है कि अहिंसा महाव्रत में यद्यपि जीवों के घात (मारने) से निवृत्ति (रहितता) है; तथापि जीवों की रक्षा करने में प्रवृत्ति है। इसी प्रकार सत्य महाव्रत में यद्यपि असत्य का त्याग है तो भी सत्यवचन में प्रवृत्ति है और अचौर्य महाव्रत में यद्यपि नहीं दिये हुए पदार्थ के ग्रहण करने का त्याग है तो भी दिये गये पदार्थों में ग्रहण करने में प्रवृत्ति है, इत्यादि एकदेश प्रवृत्ति की अपेक्षा से ये पाँचों महाव्रत हैं। इन एकदेश रूप व्रतों का मन, वचन और काय की गुप्ति स्वरूप जो विकल्परहित ध्यान है उसके समय में त्याग है और समस्त शुभ तथा

अशुभ की निवृत्ति रूप जो निश्चय व्रत है उसका त्याग नहीं है।

प्रश्न— त्याग शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर — जैसे हिंसा आदि रूप पाँच अव्रतों में रहितपना है उसी प्रकार जो अहिंसा आदि पंचमहाव्रतरूप एकदेश व्रत है उन में रहितपना है। यही त्याग शब्द का अर्थ है। इन एकदेश व्रतों का त्याग किस कारण से होता है? ऐसा पूछो तो उत्तर यह है कि मन-वचन और काय इन तीनों की गुप्तिरूप जो अवस्था है; उसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप जो विकल्प है उसका स्वयं ही अवकाश नहीं है, अर्थात् मन, वचन और काय की गुप्तिरूप ध्यान में कोई प्रकार का भी विकल्प नहीं होता और अहिंसादि महाव्रत विकल्प रूप है इसीलिए वे त्रिगुप्तिरूप ध्यान में रह सकते हैं। और जो दीक्षा के पश्चात् दो घटिका (घड़ी) प्रमाणकाल में ही भरतचक्रवर्ती मोक्ष पधारे हैं उन्होंने भी जिन दीक्षा को ग्रहण करके, क्षणमात्र (थोड़े समय तक) विषय और कषायों की रहितता रूप जो व्रत का परिणाम है उसको करके तत्पश्चात् शुद्धोपयोग रूप, जो रलत्रय उस स्वरूप, जो निश्चय नाम का धारक और वीतराग सामायिक नाम का धारक निर्विकल्प ध्यान है, उसमें स्थित होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। परन्तु श्री भरत जी के थोड़े समय व्रत परिणाम रहा इस कारण लोग भरतजी के व्रत परिणाम को नहीं जानते हैं। अब उसे श्री भरत जी की दीक्षा के विधान का कथन करते हैं। श्री वीर वर्द्धमान स्वामी तीर्थकर परमदेव के समवशरण में श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया कि 'हे भगवन्! श्री भरत चक्रवर्ती के जिन दीक्षा को ग्रहण करने के पीछे कितने काल में केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ? इस पर श्री गौतमस्वामी गणधर देव ने उत्तर दिया कि हे, श्रेणिक राजन्! बन्ध के कारण भूत जो केश (बाल) हैं उनको पाँच मुष्टियों से उखाड़कर तोड़ते हुए ही अर्थात् पंचमुष्टी लोंच करने के अनन्तर ही श्री भरत चक्रवर्ती केवल ज्ञान को प्राप्त हुए। बृहद् द्रव्य संग्रह पृ० ॥१६१, १६२॥



अध्याय-4

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की भूमिका

जैसे बिन्दुओं से रेखा का प्रारम्भ होता है, एक से गणना का प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से होता है। बिन्दु बिना रेखा, बीज बिना अंकुर की उत्पत्ति, स्थिति एवं वृद्धि नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि नहीं हो सकती है। महान् तार्किक दार्शनिक संत समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि—

विद्या वृत्तस्य संभूति स्थिति वृद्धि फलोदयाः।

न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरेतिव ॥३१॥

जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

दर्शन ज्ञान चारित्रात्साधिमानमुपाशनुते।

दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गं प्रचक्ष्यते ॥३१॥

जिस प्रकार किसी भी नाव का जलाशय के उस पार जाना खेवटिया के आधीन होता है, उसी प्रकार संसारी जीव का संसार समुद्र को पार करना सम्यग्दर्शन के आधीन होता है। यद्यपि मोक्षमार्गपना ज्ञान और चारित्र में भी है, परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना रूप नहीं होता। इसलिए मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्रधानता बतलाई गई है।

सम्यग्दर्शन को प्रधानता देने का कारण यह है कि बिना सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र सुज्ञान, सुचारित्र न होकर कुज्ञान, और कुचारित्र होते हैं, जिससे मोक्षमार्ग नहीं बनता है। लक्ष्यविहीन पथिक का गमन, गमन नहीं है किन्तु भटकाव है। लक्ष्य के विपरीत दिक् में जितना भी गमन हो, वह गमन लक्ष्य प्राप्ति के लिये अकिञ्चित्कर ही रहेगा। मान लीजिये दिल्ली स्थित एक व्यक्ति का लक्ष्य कश्मीर जाना है। मान लिया जाये कि दिल्ली से कश्मीर की दूरी 1000 कि.मी. है। यदि वह 10 बजे एक गाड़ी में बैठकर 1 घण्टा प्रति 100 कि.मी. गति से वह दक्षिण की ओर प्रयाण करेगा तब वह 11 बजे कश्मीर से 1100 कि.मी.

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

दूर हो जायेगा। 12 बजे 1200 कि.मी. दूरी पर रहेगा। जितना-जितना वह आगे बढ़ेगा, उतना-उतना वह लक्ष्य से दूर होता जाता है क्योंकि कश्मीर दिल्ही से उत्तर की ओर है और उसका प्रयाण दक्षिण दिक् की ओर हो रहा है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित उसका मोक्ष प्रयाण मोक्ष में पहुँचाने के लिये समर्थ नहीं होगा। अतः श्रद्धान रूपी लक्ष्य बिन्दु पहले ही निश्चित होने चाहिये।

अमृतचन्द्रसूरि जो कुन्द कुन्द साहित्य के प्रथम टीकाकार थे वे पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व की प्रथम भूमिका का वर्णन करते हुए कहते हैं—

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुमाश्रयणीयमखिलयत्नेन।

तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च॥ 21॥

रलत्रय रूपी मोक्षमार्ग में सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्न पूर्वक आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् बनते हैं जिससे मोक्षमार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग में सम्यादर्शन की प्राथमिकता एवं प्राथमिक भूमिका का प्रतिपादन करते हुए भगवद् कुन्द कुन्द आचार्य देव निम्न प्रकार बताते हैं—

‘दंसण मूलो धर्मो उवइट्यो जिणवरेहि सिस्साण॥ 2॥

(अष्ट पाहुड के दंसण पा.)

अनंत ज्ञानी अनंत जिनेन्द्र ने अपने शिष्यों को बताया है कि धर्म रूप वृक्ष की मूल सम्यग्दर्शन है।

जे दंसणेसु भद्रा णाणे भद्रा चरिते भद्रा य।

एदे भद्रा वि भद्रा सेसं पि जनं विणासंति ॥ 8॥

जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह ज्ञान से भी एवं चारित्र से भी रहित है। दर्शन भ्रष्ट महाभ्रष्ट है। जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे को भी भ्रष्ट करते हैं। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि हैं वह दूसरों को भी मिथ्यादर्शन के उपदेश की प्रेरणा देते हैं जिससे अन्य लोग भी मिथ्यादर्शन का अनुसरण करके भ्रष्ट होते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ठी।

तह जिणदंसणभट्टामूलविणट्ठा ण सिज्जांति ॥ 10॥

जैसे वृक्ष का भूल नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा प्रशाखा की वृद्धि नहीं

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

हो सकती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नष्ट होने से रलत्रय स्वरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है जिससे मोक्षरूप फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं मिलता।

सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान तथा चारित्र मोक्ष के लिये कारण न होने से वे दोनों जीव के लिये भार स्वरूप हैं। यथा—

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुसः।

पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्॥ 15॥

(आत्मानुशासन)

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शान्ति, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पत्थर के भारीपन के समान व्यर्थ है। परन्तु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है जो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है।

इसलिए भगवती आराधना में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि विश्व की सम्पूर्ण उपलब्धि से भी श्रेष्ठ बताया है।

“समदंसण लंभो वरं खु तेलोक्क लंभादो।”

(भगवती आराधना 742)

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है।

नादं सणिस्य नाणं।

नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।

अगुणिस्स णत्थि मोक्खो।

णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं॥

(उत्तराध्ययन 28/30)

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण (शाश्वत-आत्मानंद) प्राप्त नहीं होता।

“नत्थि चरित्रं सम्मत्त विहूणं”

(उत्तराध्ययन 28/29)

सम्यक्त्व (सत्य दृष्टि) के अभाव में चारित्र नहीं हो सकता।

एवं जिण पण्णतं दंसण रयणं धरेह भावेण।

सारं गुणरयणत्य सोवाणं पढ़म मोक्खस्स ॥२१॥

(अष्ट पाहुड़ के दंसण पाहुड़ से)

इसी प्रकार जो जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित सम्यग्दर्शन रूप अलौकिक अमूल्य रत्न को भाव सहित धारण करता है वह सार भूत रत्नत्रय के प्रथम सोपान में अपना पैर रखता है जो कि मोक्ष के लिए प्रथम एवं प्रधान सोपान स्वरूप है।

सम्यग्दर्शन प्रथम एवं प्रधान सोपान होने पर भी यह अन्तिम सोपान नहीं है परन्तु बिना प्रथम सोपान के अन्तिम सोपान की प्राप्ति नहीं हो सकती है, परन्तु प्रथम सोपान को ही अन्तिम सोपान मानना महती भूल है। इस सोपान को प्रथम एवं अन्तिम मानने वाला आगे के लिए लक्ष्यविहीन होने से वह आगे प्रयाण नहीं कर सकता है जिससे यथार्थ अन्तिम सोपान को प्राप्त नहीं कर सकता है।

मोक्ष महत की प्रथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकृता न लहे, सो दर्शन, धारै भव्य पवित्रा॥

सम्यग्दर्शन का लक्षण और स्वरूप
जीवाऽजीवादीनां तत्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताऽभिनिवेश-विविक्तमात्मस्तुपत्ते ॥२२॥

जीव अजीव तत्वों का श्रद्धान सदैव करना चाहिये। पृथ्वीकायिक आदि जीव धर्मास्तिकाय आदि अजीव हैं। ऐसे जीव अजीव तथा आस्व, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष का श्रद्धान अर्थात् रुचि करने योग्य हैं। वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है। वह आत्मस्वरूप से विपरीत अभिनिवेश से रहित है। विपरीत, एकान्त आदि मिथ्यात्व से रहित होने से सम्यक्त्व विपरीत अभिनिवेश से विविक्त (भिन्न) कहा गया है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामीने कहा भी है—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपो भृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांग सम्यग्दर्शन मस्मयम् ॥४॥

आप—देव, आगम—शास्त्र और तपोभूत—गुरु का जो स्वरूप कहा गया है उस स्वरूप से रहित आप, आगम और तपोभूतका दृढ़ श्रद्धान करना वो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन लोक मूढ़ता देव मूढ़ता और गुरुमूढ़ता इन तीन मूढ़ताओं से रहित होता है। निःशक्तितत्त्व, निःकांक्षितत्त्व, निर्विचिकित्सितत्त्व, अमूढ़दृष्टितत्त्व, उपगृहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इन आठ अंगों से सहित होता है तथा ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, बुद्धि, तप और शरीर आठ मद से रहित होता है। यहाँ कोई यह शंका करे कि शास्त्रों में छह द्रव्य, सात तत्त्व तथा नौ पदार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है परन्तु यहाँ आचार्य ने देव—शास्त्र गुरु की प्रतीति को सम्यग्दर्शन कहकर अन्य शास्त्रों में प्रतिप्रादित लक्षण का संग्रह नहीं किया है, तो इस शंका का समाधान यह है कि आगम के श्रद्धान से ही छह द्रव्य, सात तत्त्व तथा नौ प्रदार्थों के श्रद्धान रूप लक्षण में शास्त्र का संग्रह हो जाता है क्योंकि “अवधितार्थ प्रतिपादक मात्र क्वन आगम्” अनाधिक अर्थ का कथन करनेवाला जो आप का वचन है वहीं आगम हैं। आगम का यह लक्षणकारों ने स्वीकृत किया हैं। इसलिए आगम के श्रद्धान में ही छह द्रव्य आदि का श्रद्धान संग्रहीत हो जाता है। समन्तभद्र स्वामी द्वारा प्रदत्त सम्यग्दर्शन की परिभाषा बहुत ही व्यापक अनुभवपरक एवं अकाद्य भी है। महान् समीक्षक आचार्यश्रीने कहा है कि श्रद्धावान बनो, परंतु अंधश्रद्धानी नहीं, सत्य ग्राही होकर विनम्री बनो, ज्ञान, दान बलादि को आत्मकल्याण में प्रयोग करके सदुपयोग करो, परन्तु उससे अभिमानी बनकर स्व—पर अपकार करके दुरुपयोग मत करो। केवल सत्य द्रव्य तत्त्व या देव, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा ही पर्याप्ति नहीं है इसके साथ—साथ धार्मिकों के साथ भी वात्सल्यपूर्ण सद्व्यवहार करो, उनकी सेवा करो। धर्माचरण करते हुए उसके फल से निहित स्वार्थ सिद्धि की इच्छा, चेष्टा मत करो। स्वर्य निर्मल धर्माचरण करते हुए भी न किसी धार्मिक व्यक्ति की किसी भी प्रकार की त्रुटि होने पर उस त्रुटि को एकांत में उसे समझाकर दूर करता है परन्तु वर्तमान काल में देखने में आता है कि कुछ व्यक्ति स्वयं को सद्या सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु आगमनिष्ठ मानते हुये भी उपर्युक्त गुणों से रहित पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों का ज्ञान, त्याग, तप अहंकार के लिए होता है। वे दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं को महान बनाते हैं। नारद जिस प्रकार दूसरों को परस्पर में भिड़ाकर ताली बजाकर नाचता था उसी प्रकार आज कुछ नामधारी धार्मिक व्यक्ति अन्य को परस्पर में भिड़ाकर

अपनी स्वार्थसिद्धि करते हैं या हिंसानन्द, मृषानंद आदि आर्तध्यान रौद्रध्यान करते हैं। जो अहंकार रूपी मद्य सेवन करता है वह कभी भी सच्चा सम्यग्दर्शन का धारी नहीं हो सकता क्योंकि जो घमड़ करता व बड़प्पन के कारण दूसरे धार्मिक व्यक्तियों का अनादर करता हैं वह धर्म का भी अनादर करता है अतः वह यथार्थ धार्मिक व्यक्ति नहीं हो सकता है।

(1) निःशंकित अंग का स्वस्प

सकलमनेकांतात्मकमिदमुक्तं वस्तुजातमखिलज्ञैः।

किमु सत्यमसत्यं वा न जातु शंकेति कर्तव्याम्॥23॥

उस सम्यक्त्व के अष्टांग में निशंकितत्व का निरूपण यहाँ कर रहे हैं। भव्य जीवों को सत्य तत्त्व के ऊपर शंका करना कर्तव्य नहीं हैं। यहाँ शंका का अर्थ संदेह है। निशंक अर्थात् निसंदेहत्व है। उपर्युक्त तत्त्वों का वर्णन अखिलज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ के द्वारा देखा हुआ है, प्रतिपादित किया गया है। सर्वज्ञ ने इन तत्त्वों को अनेकान्तात्मक दिखाया एवं बताया है। सर्वज्ञ ने समस्त द्रव्यों को अर्थात् पदार्थसमूह को अनेकान्तात्मक देखा है और सन्तभंगी से प्रतिपादित किया है। इसलिये अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप में कभी भी शंका नहीं करनी चाहिये। यह वस्तु स्वरूप सत्य है या असत्य है ऐसा संदेह नहीं करना चाहिये। “नान्याथावादिनो जिनाः” अर्थात् वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान् अन्यथावादी नहीं होने के कारण उनके द्वारा प्रतिपादित सम्पूर्ण द्रव्य, तत्त्व तथा पदार्थ सत्य ही हैं। प्रत्यक्ष से दृश्यमान वस्तु से लेकर आकाश तक सम्पूर्ण पदार्थसमूह नित्य, अनित्य गौण मुख्य रूप से अनेकान्त रूप सर्वज्ञ के द्वारा कहा गया है। मूल, अग्र, पोर, बीज, कन्द, शाखा, जल आदि जीव प्रत्येक –साधारण अनन्तकाय, संख्यात् (असंख्यात् अनन्त) रूप है ऐसे सर्वज्ञ देव ने कहा है जो कि सत्य ही है। इस प्रकार विचार करके संदेह को दूर करके निशंकत्व होता है। निश्चय से सम्यक् दृष्टि सप्तभय रहित मिथ्यात्वादि सत्तावन आत्मव रहित होता है यह स्वतः सिद्ध है। इसलिये निशंक होकर के प्रवर्तन करता है। ग्रन्थ विस्तार भय से उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी के द्वारा कहा हुआ धर्म कभी भी असत्य नहीं हो सकता है। इसलिए ऐसे आत्म के द्वारा कहे हुए धर्म के ऊपर शंका नहीं करनी

चाहिए क्योंकि “संशय आत्मा विनश्यति” अर्थात् संशयशील व्यक्ति विनाश को प्राप्त करता है क्योंकि संशयशील व्यक्ति की श्रद्धा कमज़ोर होने के कारण उसका ज्ञान कमज़ोर होता है और उसके कारण उसका आचरण भी दुर्बल हो जाता है। जो पहले आगम से पूर्ण श्रद्धा का विषय था आज वह वैज्ञानिक शोध-बोध से सत्य साबित हो गये है और हो रहे हैं। जैसा कि वनस्पति एकेन्द्रीय जीव है, विश्व-प्रतिविश्व अवस्थान है, द्रव्य प्रतिद्रव्य का सद्भाव है, प्रत्येक द्रव्य सापेक्ष है द्रव्य एवं ऊर्जा अविनाशी है प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है कार्य कारण सम्बन्ध आदि अनेक विषय वैज्ञानिक परिप्रेक्ष से सिद्ध हो चुका है। उसी प्रकार ध्यान, योगासन, अहिंसा, शाकाहार, स्वप्न, शकुन, दूर-सम्प्रेषण अति मानवीय घटनाएँ भी सत्य हैं। वैज्ञानिक तथ्य से पूर्ण है। वैज्ञानिक लोग मानने लगे हैं भले कुछ विषय वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण सत्य सिद्ध न हो पाया है वह भी असत्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। जो संख्यात् असंख्यात् अनन्त का वर्णन जैन धर्म में पाया जाता है वह भी गणित की दृष्टि से अदि महत्वपूर्ण सत्य तथ्य है।

(2) निःकांकित अंग का लक्षण

इहजन्मनि विभवादीनमुचक्रित्व-के शब्दत्वादीन्।

एकान्तत्वाद-दूषित-परसमयानपि न चाऽकांक्षेत्॥24॥

सम्यक्दृष्टि जीव इस जन्म में धन सम्पत्ति आदि की तथा परलोक में चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री आदि की पद की भी आकांक्षा नहीं करता है। इस लोक में तद्भव में धन, पुत्र, स्त्री आदि पदार्थों को तथा परभव में धर्म के प्रभाव से चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, कामदेव आदि की पदवी भी नहीं चाहता। यह व्यवहार से है। निश्चय से वह एकान्तत्वाद से दूषित मिथ्यात्व को नहीं चाहता है। एकान्तत्वाद से मिथ्यात्व आग्रह से दूषित परसमय मिथ्यात्मा-मिथ्याशास्त्र को वह नहीं चाहता है। सम्यक्दृष्टि को जाति, लाभ आदि अष्ट मद भी नहीं होते हैं। मद उत्पत्ति से आकांक्षा भी होती है। इसलिए सम्यक्दृष्टिकोण निःकांकित रूप द्वितीय अंग होता है।

सम्यक्दृष्टि को यह श्रद्धान हो जाता है कि मेरा शुद्ध स्व आत्मतत्त्व को छोड़कर अन्य समस्त द्रव्य धन, सम्पत्ति, वैभव, पुत्र, मित्र, स्त्री, कुटुम्ब पर तो हैं ही इसके साथ-साथ मेरा शरीर पर ही है क्योंकि शरीर भी अनन्तानन्त पुद्गल

परमाणु से बना हुआ है और पुद्गल परमाणु अचेतन है, जड़ है और आत्मा तत्त्व शुद्ध चेतनद्रव्य है। इसलिए सम्यग्दृष्टि श्रद्धापूर्वक स्व-आत्मतत्त्व को ही चाहता है और उसकी ही भावना भाता है भले चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से वह भूमिका के अनुसार जीवनयापन के लिये कृषि आदि करता है, शरीर की सुरक्षा के लिए भोजन करता है, औषधि सेवन करता है, परिवार का भरणपोषण भी करता है तथापि वह धर्म आत्म कल्याण के लिए ही करता है न कि धर्म से सांसारिक भोग, लाभ, प्रसिद्धि, पूजा, सम्पत्ति चाहता है। सम्यग्दृष्टि को पूजा, दान आदि से जो पुण्य संचय होता है परन्तु उससे वह मोक्ष चाहता है। यथा—

अर्हन् पुराणपुरुषोत्तमं पावनानि
वस्तुन्यनूनमखिलान्ययमेकं एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमलं केवल बोध वहे
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि। (12)

हे अर्हन्! हे पुराण पुरुषोत्तम! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त आदि द्रव्यों का आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवलज्ञानरूपी अग्नि में एकाग्रचित होकर हवन करता हूँ। परन्तु अभी प्रायोगिक रूप में देखने में, सुनने में आता है कि अधिकांश लोग पूजा, पाठ, मण्डल-विधान, पंचकल्याण आदि निहित स्वार्थ के लिए करते हैं। विशेषतः धर्म तो धन के लिये करते हैं। सम्यग्दृष्टि तो धर्म से रहित चक्रवर्तित्व को भी नहीं चाहता है। यथा

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्र वर्त्यपि।
स्याच्चेतोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥11॥

जिनधर्म से रहित चक्रवर्ति पद भी मुझे प्राप्त नहीं हो, चाहे दुःखी, दरिद्री भी होना पड़े, पर जिनधर्म सहित मेरा जीवन हो।

अभी तो पंचकल्याण, विधान आदि को तब सफल मानते हैं जब अधिक से अधिक धन येन-केन प्रकार से उस विधान आदि के माध्यम से इकट्ठा हुआ हो। धार्मिक कार्य के पहले जितना उस निश्चित धार्मिक कार्य में खर्च होता है उससे भी अधिक चंदा से इकट्ठा करेंगे। अनावश्यक आगम विधि से विपरीत बोली करके धन संग्रह करेंगे। विशेष बोली से धन अधिक संग्रह के लिए अनावश्यक

आडम्बर, नाटक, संगीत, कवि सम्मेलन आदि कार्यक्रम मुख्य कार्यक्रमों को भी कॉट-छांट करके रखेंगे। कुछ साधुसन्त भी ख्याति पूजा-लाभ के लिए आवश्यक एवं अनावश्यक भी धार्मिक कार्यक्रम करते हैं और बाह्य आडम्बर भी रचाते हैं यह सब निःकांकित अंग में दोष हैं।

(3) निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण

क्षुत्रष्णा-शीतोष्ण - प्रभृतिषुनाना-विधेषु भावेषु।

द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया ॥25॥

विभिन्न प्रकार द्रव्य में पुनः मल-मूत्र रक्त, वान्ति आदि में घृणा नहीं करना निर्विचिकित्सा गुण है। निश्चय से शरीर आदि को पवित्र मानना मिथ्या संकल्प से दूर होना निर्विचिकित्सा गुण है। इसी प्रकार क्षुधा-तृष्णा, शीत-उष्ण आदि में भी जानना चाहिये।

स्वभावतोऽशुचौकाये रत्नत्रय पवित्रिते।

निर्जुगुप्ता गुण प्रीतिर्मता निर्विचिकित्सत॥

(रत्नकरण.)

धर्मात्मा का शरीर भले अपवित्र, असुन्दर घृणित दिखाई दे तो भी सम्यग्दृष्टि गुण ग्राही होने के कारण उसकी दृष्टि शरीर में न जाकर अन्तरंग में प्रकाशमान रत्नत्रय पर पड़ती हैं। इसीलिए सम्यग्दृष्टि रत्नत्रय से पवित्र शरीर में ग्लानि नहीं करता है उसके गुण में प्रीति रखता है। जो यथार्थ से धर्मात्मा होता है वह गुणग्राही होता है परन्तु कुछ ढोंगी धर्मात्मा गुणियों को देखकर घृणा एवं ईर्ष्या करते हैं, नीतिकारों ने कहा भी हैं—

निर्गुणः गुणं न वेत्ति गुणी गुणिषु च मत्सरा।

गुणी च गुणिषुरागी च सरला विरलाजनाः ॥

जो निर्गुणी होते हैं वे गुण को नहीं पहचानते हैं, इसीलिए वे गुणों का आदर नहीं करते हैं। परन्तु कुछ ईर्ष्यालु गुणी व्यक्ति होते हैं वे गुणी को देखकर ढाह करते हैं। जैसे एक गली के कुत्ते दूसरी गली के कुत्ते को देखकर भोकते हैं एवं काटते हैं। परन्तु जो यथार्थ गुणी होकर सरलता रूप से दूसरे गुणी के प्रति आदर सत्कार प्रेम भाव रखते हैं ऐसे व्यक्ति अत्यन्त विरल होते हैं।

(4) अमूढ़दृष्टि अंग का लक्षण

लोकेशास्त्राऽभासे, समयाऽभासे च देवताऽभासे।

नित्यमपि तत्वसुचिना, कर्तव्यममूढ़दृष्टित्वम् ॥२६॥

तत्वसुचि वाले जीवों को सतत अमूढ़-दृष्टित्व गुण को अपनाना चाहिए। वह अमूढ़ दृष्टितत्त्व है। वस्तु स्वरूप जैसी है उसी को उसी प्रकार जानना चाहिये। जिनमत में कहे हुए देव, शास्त्र, गुरु में दृढ़ता रखनी चाहिए अर्थात् उनकी श्रद्धा, भक्ति में दृढ़ता रखनी चाहिये। जीवादि षट् द्रव्य जहाँ रहते हैं उसे लोक कहते हैं। जो शास्त्र के समान लगता है परन्तु यथार्थ शास्त्र नहीं है अर्थात् सदोष शास्त्र है उसे शास्त्राभास कहते हैं। इसी प्रकार वीतराग सर्वज्ञ निष्कलंक जिनेन्द्र भगवान से अन्य देव देवताभास है। इनमें सम्यक्दृष्टियों को अमूढ़ दृष्टि होकर व्यवहार करना चाहिये। निश्चय से मोह भाव से रहित होने के कारण सम्यक्दृष्टियों को संशय विमोह विभ्रम नहीं होते हैं। इसलिये वे अमूढ़ दृष्टिवाले होते हैं। अनात द्वारा कहे हुए तत्त्व में या चेतन अचेतन पदार्थ में मोह रहितपना अमूढ़ दृष्टित्व है।

असत्य को सत्य मानना, अधर्म को धर्म मानना, अगुरु को गुरु मानना, सत्य-तथ्य से रहित रुद्धियों को, परम्पराओं को किम्बदन्तियों को सत्य मानना मूढ़ता है। जितने प्रकार की मिथ्या धारणायें हैं, मिथ्या परम्परायें हैं, मिथ्या मान्यतायें हैं उतने प्रकार की मूढ़ता हैं तथापि (1) लोक मूढ़ता (2) देव मूढ़ता (3) गुरु मूढ़ता में अन्यान्य मूढ़ता गर्भित की जाती हैं। तीनों मूढ़ता के वर्णन निम्न प्रकार हैं।

(1) लोक मूढ़ता :

धर्मभाव से नदी, समुद्र में स्नान करना, पत्थर, वृक्ष, दीवार, ईट, देहरी, सर्प, गाय, सिलोडा आदि को पूजना लोक मूढ़ता हैं। धर्म मानकर पहाड़ से गिरकर मरना, नदी या समुद्र में डूबकर मरना, तीर्थ क्षेत्र में आत्महत्या करना, जपीन के अन्दर बैठकर मिट्ठी से शरीर को ढाँककर आर्त-रौद्र ध्यान से मरना, अग्नि में कुदकर मरना ये लोक मूढ़ता हैं। काँटे के उपर सोना, चारों तरफ अग्नि जलाकर बीच में बैठना, मूढ़ता सहित विभिन्न कायक्लेश करना भी लोक मूढ़ता हैं। धर्म जानकर बलि आदि देना मूढ़ता है। पति के मरने के पश्चात् सती बनने के लिये अग्नि में गिरकर मरना भी लोक मूढ़ता हैं। इससे धर्म नहीं होता है, इसे धर्म मानना ही मूढ़ता है।

(2) देव मूढ़ता :

राग-द्वेष-मोह विकार भाव से सहित स्त्री परिवार, अस्त्र-शस्त्र, राग-रंग सहित देवों को वर आदि अभिलाषा से पूजना देव मूढ़ता कहा जाता है। रागी-द्वेषी, स्त्री सहित, अस्त्र-शस्त्र धारी सच्चे देव नहीं होते हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप, मोह विकार भाव से रहित, काम विकार से रहित, स्त्री परिवार से रहित, अस्त्र-शस्त्र से रहित सच्चे देव होते हैं। इस प्रकार से भगवान को पूजना मूढ़ता नहीं है, परन्तु सच्ची श्रद्धा-भक्ति एवं गुणानुराग हैं।

(3) गुरु मूढ़ता :

रागी-द्वेष, स्त्री कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह सहित, मद्य, मांस आदि व्यसनों के सेवी, गांजा, तम्बाकू आदि का सेवन करने वाले तथा विभिन्न वस्त्र धारण करके अपने आपको साधु (श्रमण) समझने वाले धर्म-पाखण्डियों को गुरु मानकर पूजन-सत्कार करना, दक्षिणा-देना, गुरु मूढ़ता है। इस प्रकार मूढ़ता को धर्म में व धर्म नीति में कहीं भी स्थान नहीं है। धर्म तो एक निर्मल आध्यात्मिक सोपान है। उस आध्यात्मिक सोपान में क्रमशः चढ़ने पर एक दिन यह आत्मा अपने आपको पा लेता है, यहीं उसकी पूर्णता होती है, जिसे सिद्ध कह सकते हैं। अतः उस सिद्धत्व की प्राप्ति के लिये अपनी कल्पना से स्वच्छन्द आचरण करने वाले साधु की उपासना करना ही गुरु मूढ़ता है जो कि अर्धम है।

(5) उपगूहन अंग का लक्षण

धर्मोऽभिवर्धनीयः सदात्मनोमार्दवाऽदिभावनया।

परदोष-निगृहनमपि विधेयमुपवृहंणगुणार्थ ॥२७॥

व्यवहार से सम्यक्त्वधारी भव्य जीवों के द्वारा परदोषों को छिपाना, आच्छादन करना और वह भी गुणों को बढ़ाने के लिए करना उपगूहन गुण है। पुनः निश्चय से सम्यक्दृष्टि के द्वारा आत्मा का धर्म स्वरूप ज्ञान, उपयोग, दर्शन उपयोग स्वरूप सरलता, सहजता आदि गुणों को वृद्धिंगत करना उपवृहण है। उत्तम क्षमादि आत्म धर्म की वृद्धि करना उपगूहन इसका भावार्थ है। अर्थात् दूसरों के दोष को छिपाना उपगूहन है और स्वयं के गुणों को बढ़ाना उपवृहण है। दूसरों के दोष उस दोष की वृद्धि के लिए छिपाना नहीं है परन्तु एकान्त में उसे समझाकर उसके दोषों को दूर करके उसके गुणों को बढ़ाना उपगूहन है। यह

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग कार्य वह व्यक्ति कर सकता है जो स्वयं अपने आध्यात्मिक गुणों को बढ़ाता है वही दूसरों के दोषों को दूर करके दूसरों के गुणों को बढ़ा सकता है। जिस प्रकार प्रकाशित दीपक ही बुझे हुए दीपक को प्रकाशित कर सकता है।

**स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्त जनाश्रयाम्।
याच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगृहनम्॥15॥**

(रत्न. श्रा)

स्वभाव से निर्मल रत्नत्रय मार्ग की अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों के आश्रय से होने वाली निन्दा को जो परिमार्जित करते हैं— दूर करते हैं उनके उस परिमार्जन को उपगृहन कहते हैं।

**धर्मोऽभिविद्धनीयः सदात्मनो मार्दवादि भावनया।
परदोष निगृहनमपि विद्येयमुपबृंहणगुणार्थम् ॥27॥**

(पुरुषार्थ.)

उपवृहण नामक गुण के लिये मार्दव, क्षमा, सन्तोषादि भावनाओं से निरन्तर अपनी आत्मा के धर्म की अर्थात् शुद्ध स्वभाव की वृद्धि करनी चाहिए और दूसरे के दोषों को गुप्त भी रखना चाहिये।

सम्यग्दृष्टि को वस्तु स्वरूप का परिज्ञान होने के कारण वह स्वदोष का परीक्षण-निरीक्षण करके स्वदोष को हटाता है एवं आत्म धर्म की वृद्धि करता है। वह गुणग्राही होने के कारण दूसरों के दोषों को देखता हुआ एवं जानता हुआ भी वह दोषों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करता है क्योंकि वह जानता है कि पूर्व कर्म के कारण दोष नहीं करना चाहते हुए भी धर्मात्मा से दोष हो जाते हैं। वह सोचता है कि जैसे मेरे अनेक दोषों से बचने की कोशिश करने पर भी मुझसे अनेक दोष हो जाते हैं— इसी प्रकार छद्मस्थ अवस्था में परिणत दशा में कर्म की प्रबलता से दोषों का होना स्वाभाविक है। दूसरे धर्मात्माओं का दोष सबके सामने प्रगट करने से धर्मात्मा के अपमान के साथ साथ धर्म का भी अपमान होता है तथा दोष एवं वैरत्व भाव होने के कारण विघटन, कलह आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इतना ही नहीं इससे पर भव में नीचता, दीनता, अपमान के योग्य नीच गोत्र का भी बन्ध होता है। यथा—

“परात्म निन्दा प्रशंसे सदसदगुणच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य” ॥25॥

(तत्वार्थ सूत्र अध्याय 6)

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग दूसरों की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों के सदगुणों का छादन तथा अपने अविद्यमान गुणों का उद्भावना करना ये सब नीच गोत्र कर्म के आस्त्रव के कारण हैं।

सम्यग्दृष्टि कर्म की गतिविधि को जानने के कारण वह ऐसा कर्म नहीं करता है जो मोक्ष मार्ग के लिये प्रतिबन्धक स्वरूप हो। इसिलिए वह स्वनिन्दा करता है और दूसरों के गुणों के प्रति अनुराग रखता है। इससे मान-सम्मान के साथ-साथ आत्म कल्याण के निमित्तभूत उच्च गोत्र का बन्ध करता है। यथा—

तदिपर्ययो नीचेवृत्तिनुत्सेसको चोत्तरस्य ॥26॥

(तत्वार्थ सूत्र)

नीच गोत्र के आस्त्रव के कारणों से विपरीत कारण (आत्म निन्दा, पर प्रशंसा परसदगुणोद्भावन, आत्म सदगुण आच्छादन) गुणीजनों के प्रति विनयपूर्वक नम्रवृत्ति, अहंकार का अभाव तथा अनुत्सेक कहिए, उद्भृत उद्घष्ट स्वभाव नहीं रखना, ये सब उच्च गोत्र के आस्त्रव के कारण हैं।

6. स्थितिकरण अंग का लक्षण

**काम-क्रोध-मदादिषु चलयितुमुदितेषु वर्त्मनोन्यायात्।
श्रुतमात्मनः परस्य च युक्त्या स्थितिकरणमपि कार्यम्॥28॥**

स्वयं को जिनमतानुसार अर्थात् जिनशास्त्र के अनुसार तथा दूसरे भव्यों को स्थिर करना स्थितिकरण अंग है। स्वयं या दूसरे भव्य जब काम, क्रोध, मद आदि से प्रेरित होकर न्याय मार्ग से विचलित हो जाते हैं उन्हे पुनः न्याय मार्ग में, धर्म मार्ग में स्थिर करना स्थितिकरण अंग है। व्यवहार से काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि धर्म विध्वंसकारी कारणों से धर्म से विचलित दुष्ट साधर्म्य व्यक्तियों को पुनः धर्म मार्ग में स्थापित करना स्थितिकरण है। निश्चय से कामादि भाव से दूर होकर संसार से उदासीन होकर स्वधर्म से विचलित नहीं होना स्थितिकरण अंग है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा धर्म एवं न्याय मार्ग में सतत दृढ़ रहकर आगे बढ़ने की कोशिश करता है। तो भी कर्म उदय से कभी-कभी विचलित भी हो जाता है। पूज्य पाद स्वामीने कहा भी है—

**जानन्नप्यात्मनस्तत्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्व विभ्रमसंस्काराद् भ्रांतिं भूयोऽपिगच्छति ॥15॥**

(समाधिशतक)

अन्तरात्मा आत्म तत्व को जानता हुआ भी तथा शरीर से भिन्न आत्मा की भावना करता हुआ, मानता हुआ फिर भी पुराने बहिरात्मा अवस्था के मिथ्या संस्कार से शरीर को आत्मा समझ लेने का भ्रम कर बैठता है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास पुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि फूट, कलह, युद्ध के कारणों में से अनेक समय में एक कारण है दूसरों के दुर्गुण को प्रकट करना या दूसरों की निन्दा करना रहा है। जैसे महाभारत से ज्ञात होता है कि द्रोपदी दुर्योधन की निन्दा करते हुए बोली थी कि “अधे के बेटे अधे ही होते हैं।”— इस वाक्-बाण से बिन्दु होकर दुर्योधन के हृदय में महाभारत का बीजारोपण हुआ था। वह बीज समय को प्राप्त करके अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित होकर महाभारत रूपी फल रूप में परिणित हुआ। इसलिए प्रेम, संगठन आदि के इच्छुक व्यक्ति दूसरों की निन्दा न करें, दूसरों के दुर्गुण प्रकट न करें।

7. वात्सल्य अंग का लक्षण

अनवरतमहिसाया शिव-सुख-लक्ष्मी निवंधने धर्मे।

सर्वेष्वपि च सधर्मिषु, परम वात्सल्यमालम्ब्यम् ॥२९॥

सम्यक्दृष्टि का समस्त सधर्मी में परम उत्कृष्ट वात्सल्य प्रीति भाव होता है। यह व्यवहारनय की अपेक्षा है। निश्चय से शिवसुखरूपी लक्ष्मी अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी को देने वाला धर्म अर्थात् जिनधर्म में उत्कृष्ट स्थेह होता है। पुनः अहिंसादि लक्षण स्वरूप धर्म में भी वात्सल्य भाव होता है। गुणानुरागी होने के कारण सम्यक्दृष्टि को वात्सल्य को वात्सल्य भाव निश्चय से होता ही है जो कि सप्तम् अंग है।

स्वयथान्प्रति सद्भावसनाथापेतके तवा।

प्रति पतिर्थायोग्यं वात्सल्यमभिलम्प्यते ॥१७॥

(रत्न. श्रा.)

अपने सहधर्मी बन्धुओं के समूह में रहने वाले लोगों के प्रति अच्छे भावों से सहित और माया से रहित उनकी योग्यता के अनुसार आदर सल्कार आदि करना वात्सल्य गुण कहा जाता है।

सम्यग्दृष्टि का वात्सल्य भाव गोंद या रस्सी का काम करता है। जैसे गोंद कागज को चिपकाने में, एवं रस्सी लकड़ी को बांधने में समर्थ होती है, उसी प्रकार धर्मात्मा का वात्सल्य, गुण दूसरों को प्रेम भाव से संगठित करके बाँधता

है। यह वात्सल्य भाव, सम्यग्दर्शन के प्रकट होने से अन्तरंग से उद्भूत होता है।

इसको कोई भी भौतिक वैभव से प्राप्त नहीं कर सकता है। एक कवि ने कहा है—

प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।

राजा प्रजा जेहि रुचे, शीश देर ले जाय॥

यह प्रेम न बगीचे में उत्पन्न होता है, न बाजार में प्राप्त होता है। राजा हो या प्रजा, जिसे प्रेम चाहिये, प्रेम के लिए सिर देकर भी प्राप्त कर लेना चाहिये। किसी भी कारणवश प्रेम रूपी डोरी को बलपूर्वक नहीं तोड़ना चाहिए। कहा भी है—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चिटकाय।

टूटे तो फिर ना जुडे, जुडे गाँठ पड़ जाय।

रहिमन कवि कहते हैं कि प्रेम रूपी डोरी को जबरदस्ती नहीं तोड़ना चाहिए। टूटने पर फिर नहीं जूँड़ति है और जूँड़ने पर भी गाँठ पड़ जाती है। आज भाई-भाई, धर्मात्मा, धर्मात्म नेता-नेता, साधु-साधु, थोड़ी-थोड़ी बातों को लेकर झगड़ा, कलह, वाद-विवाद करके फूट डाल देते हैं, और उस फूट के कारण आज परिवार धर्म, समाज, देश राष्ट्र आदि बरबाद हो रहे हैं। लोकोक्ति है—

खेत में फूट होवे तो सब कोई खावे।

घर में फूट होवे तो घर ढह जावे॥

इस फूट के कारण ही प्रसिद्ध ग्रीक सम्यता नाम शेष रह गयी। अत्यन्त धनी, मानी, समृद्धि, शक्तिशाली, भारतवर्ष भी अनेक वर्ष तक पराधीनता की जंजीर पहने रहा। धर्म के नाम पर विभिन्न देश-काल में नर, धन, सभ्यता, संस्कृति, मन्दिरों का विध्वंस हुआ। अभी भी साम्राज्यिक, राजनीतिक, भाषागत, प्रान्तगत, कलह आतंकवाद युद्ध चल रहा है।

वात्सल्य शब्द का अर्थ है कि गाय जैसे बछड़े के प्रति निःस्वार्थ भाव से प्रेम करती है, पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार धर्मात्मा के प्रति निःस्वार्थ भाव से प्रेम, प्रीति तथा संरक्षण करना बछड़े की प्रीति से गाय सिंहनी के समुख चली जाती है और विचार करती है कि यदि मेरा मरण हो जाय और बछड़े की रक्षा हो जाय तो अत्युत्तम है। ऐसी प्रीति धर्म और धर्मात्माओं के प्रति होनी चाहिए जो तन-मन-धन सर्वस्व खर्च करके अपनी प्रीति को पालें। राजवार्तिक में वात्सल्य अंग के साथ-साथ प्रवचन वात्सल्य में भी सहधर्मी के साथ प्रेम करने के लिए

कहा है यथा—

बछड़े के गाय के समान धार्मिक जनों में स्नेह प्रवचन वत्सल्त्व है। जैसे गाय अपने बछड़े से अकृत्रिम स्नेह करती है, उसी प्रकार सधर्मी जनों को देखकर तद्गत स्नेह से ओत-प्रोत हो जाना, वा चित्त का धर्म स्नेह से आर्द्र हो जाना प्रवचन वत्सल्त्व है। जो साधर्मियों के साथ स्नेह है, वही तो प्रवचन स्नेह है। सम्यक् प्रकार से पृथक्-पृथक् या सर्व रूप से भावित ये षोडश कारण भावनायें तीर्थकर नाम कर्म के आस्त्रव का कारण होती हैं। वात्सल्त्व भाव से धर्म एवं धर्मात्मा के प्रति प्रेम प्रकट होता है। संगठन बढ़ता है, आत्म विशुद्धि होती है, कर्म निर्जरा होती है, इसके साथ-साथ तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय तीर्थकर पुण्य प्रकृति का बन्ध होता है जिससे यह जीव आगे जाकर तीन लोक के भव्यों के लिए अनिमित्तिक बन्ध स्वरूप बनता है। जो जीव सम्पूर्ण जीवों के कल्याण के लिए षोडश कारण स्वरूप मैत्री भावना भाता है वही जीव आगे जाकर तीर्थकर बनता है। उस पूर्व भव से भाविक, प्रेम, मैत्री, वात्सल्य भाव के कारण ही तीर्थकर के विशाल विश्व धर्म (समवसरण) में जन्म-जात विरोधी मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी एक साथ बैठकर वात्सल्य भाव से धर्मामृत का पान करते हैं। जेनाचार्योंने वात्सल्य भाव के चरमोत्कृष्ट स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है—

जीव जिणवर जे मुणहिं जिणवर जीव मुणेहिं।

ते सम भाव परद्विया लहु णिव्वाणं लहेई॥

जो जीव को जिनवर मानता है एवं जिनवर को जीव मानता है ऐसे समदृष्टि साम्य भाव को रखने वाला जीव शीघ्रातिशीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करता है। इसमें आचार्य श्रीने कहा है कि धर्मात्मा जिनेन्द्र के प्रति जैसा आदर भाव रखता है उसी प्रकार अन्य जीव के प्रति आदर भाव रखकर के उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, द्वेष एवं धृष्णा नहीं करनी चाहिए। जैसे स्वयं को प्रेम, आदर, सत्कार, मान, सम्मान, बहुमान, वात्सल्य चाहिए उसी प्रकार अन्य को भी उसकी आवश्यकता है। इसलिए जो स्वयं के लिए चाहिए वही दूसरे के लिए वितरण करना चाहिए, वह व्यवहार दूसरों के साथ भी करें। कहा भी है—

जं इच्छासि अप्पणतो जं च न इच्छसि अप्पणतो।

तं इच्छ परस्य वि या, एत्तियगं जिण सासण॥

जो स्वयं के लिए चाहते हो और जो अपने लिये नहीं चाहते हो, वही दूसरों के लिये भी चाहो यह जिन शासन का सार है।

इसी प्रकार उपरोक्त सम्पूर्ण अंग को लेकर धर्मात्मा का प्रेम आदर करना चाहिए। आज विशेषकर जैन धर्मावलम्बियों में इस गुण का अभाव होने के कारण भाई-भाई में, साधु-साधु में, घर-घर में, समाज-समाज में शीत युद्ध चल रहा है। रोगी जिस समय में जिस रोग से पीड़ित रहता है उसके निवारण के लिये उसके योग्य औषधि की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार आज जैन धर्मावलम्बी अवात्सल्यरूपी द्वेष, धृष्णा, तिरस्कार, फूट, कलह, वाद-विवाद रूप रोग से ग्रसित हैं। इसलिये इस अवात्सल्य रूप रोग को दूर करने के लिए एकमेव, अचूक रामबाण औषधि वात्सल्य भाव है। आज जैन धर्मावलम्बी वात्सल्य रूपी अमृत का पान करके स्वस्थ, निरोगी, सुदृढ़, उन्नत, प्रगतिशील बनने के लिए आगे बढ़ें। वर्तमान के जैन धर्मावलम्बी आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ होते हुए भी संगठन के अभाव में विशेष रचनात्मक कार्य करके विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए असमर्थ हो रहे हैं। जैनियों को, मुसलमानों में जो संगठन, भाईचारा एवं अपने धर्म के प्रति समर्पित भाव हैं उसका अनुकरण अनुसरण करना चाहिए। कर्नाटक प्रदेश के अजैन बन्धु जैनियों को उलाहना देकर कहते हैं— ‘‘डोम लोग नहीं मिलेंगे हो नष्ट हो जायेंगे, जैन लोग मिलने पर नष्ट हो जायेंगे।’’ अर्थात् डोम लोग नहीं मिलेंगे तो खेल नहीं दिखा सकते जिससे जीवन-यापन ठीक से नहीं चल सकता है और जैन लोग एक साथ मिलने पर कलह झगड़ा करने लगते हैं। उत्तर भारत के अजैन बन्धु भी इसी प्रकार का एक उलाहना देते हैं ‘‘जैनी होकर छैनी बन रहे हैं।’’ अर्थात् छैनी पथर आदि को तोड़ती है उसी प्रकार जैनी लोग परस्पर को तोड़ते हैं। इसीलिये आचार्य विमलसागर महाराज कहते हैं कि— ‘‘धर्मात्माओं को कैची नहीं बनाना चाहिये सूई बनना चाहिए।’’ इस वात्सल्य भाव में संगठित भाव पूर्णरूप से निहित है। इसीलिये जैनियों को आज संगठित होकर कन्धे से कंधा मिलाकर विश्व से सामने कुछ आदर्श प्रस्तुत करने के लिए आगे बढ़ना चाहिये। चन्द्रगुप्त मोर्य के स्वन में एक स्वन था, जिसमें दो छोटे बछड़े एक रथ को वहन करके ले जा रहे हैं। इसका भविष्यत फल श्रुत, केवली मद्रबाहु स्वामी ने कहा था कि इस पंचम काल में नवयुवक नवयुतियाँ ही धर्मरूपी

रथ को वहन करके आगे गतिशील बनायेंगी। इसीलिए मेरा भी आह्वान है कि हे नवयुवक—नवयुवतियो! उठो, जागो अपना कर्तव्य सम्भालो। गिरते हुए धर्मरूपी रथ को अपने सुदृढ़ कन्धे में धारण करके उसको सच्चे धर्म के मार्ग पर गतिशील बनाओ। प्राचीन रोग के समान कलह—फूट, वाद—विवाद को वात्सल्य रूपी अचूक औषधि से दूर करके निरोगी, स्वस्थ, सबल, सुदृढ़ गतिशील बनो। वंशजों की जलती हुई झोपड़ी से निकलकर सुरम्य गगनचुम्बी शीतल सुख प्रद वात्सल्य रूपी प्रसाद का निर्माण करके सुख से निवास करो। आज देश—विदेश में, राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रेम की डोरी से बंधकर अनेक राष्ट्रीय—अन्तर्राष्ट्रीय, संस्था—समिति, संघ बन रहे हैं। तो क्या मुष्टीभर जैन धर्मावलम्बियों के मध्य में संगठन नहीं हो सकता है अवश्य हो सकता है। मनुष्यों के लिए असम्भव नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। संगठन का बीज वात्सल्य में निहित है। इसीलिये वात्सल्य को अपने हृदयरूपी उपजाऊ जमीन में डालकर गुणग्राही, उपगूहन, स्थितिकरण, आदि जल खाद रश्मि से उसको अंकुरित पल्लवित, पुष्पित एवं फलित करो। आज जैन धर्मावलम्बियों में संगठन के नाम पर अनेक संस्था, समिति, सभा, मिलन होते हुए भी वे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये या अपने लक्ष्य से विपरीत गमन कर रहे हैं। इसलिये यह संगठन आदि रचनात्मक कार्य के साथ—साथ विष्वसात्मक कार्य करके सुख्यात एवं कुख्यात हो रहे हैं। कुख्यात होने के कारण संकुचित मनोभाव, वात्सल्य भाव से रहित, निहित स्वार्थनिष्ठ, मतवाद, पंथवाद, जातिवाद, कुर्सीवाद, अर्थवाद, दलवाद (पार्टीबाजी) आदि हैं। संगठन के लिये ये सब विरोधात्मक कारण हैं इसीलिये इन विरोधी कारणों को हटाने से अत्यन्त सरल एवं सहज साध्य है।

8. प्रभावना अंग का लक्षण

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रय तेजसा सततमेवा
दान-तपो-जिनपूजा-विद्याऽतिशयैश्च जिनधर्मः ॥३०॥

व्यवहारनय से सम्यक् दृष्टि भव्यों के द्वारा दान, तप, जिनपूजा अतिशय विद्या के द्वारा स्याद्वाद से अंकित जिनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए अर्थात् अतिशय से उसको बढ़ाना चाहिए। पुनः रत्नत्रय रूपी तेज से दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक आत्मा को सतत उद्योतन करना चाहिए। प्रभावना का अर्थ है

(प्र+भावना) अर्थात् प्रकृष्ट, निर्मल भावना, सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपों से जिनशासन का उद्योतन करना, आत्म प्रकाशन करना प्रभावना है।

अज्ञान तिमिर व्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।

जिन शासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्रभावना॥४॥

(रत्न.श्रा)

अज्ञान रूपी अन्धकार के विस्तार को दूर कर अपनी शक्ति के अनुसार जिन शासन के माहात्म्य को प्रकट करना प्रभावना गुण है।

जैसे अन्धकार को हटाने के लिये पहले स्वयं का दीपक जलाना अनिवार्य है। वैसे अज्ञान रूप अन्धकार में धर्म की प्रभावना करनी है तो पहले अपने अज्ञान रूप अन्धकार को हटाकर स्वयं को प्रकाशित करना चाहिए। कुन्द कुन्द स्वामीने कहा भी है—

“आद हिंदं कादव्यं यदि चेत् परहिंदं कादव्यं”

पहले आत्म कल्याण करना चाहिये सम्भव हो तो पर का भी कल्याण करना चाहिये। महात्मा बुद्ध ने भी कहा था—

आत्म दीपो भव, पर दीपो भव ॥ पहले आत्मा रूपी दीपक को प्रकाशित करो फिर दूसरों को भी प्रकाश दो। इसीलिए धर्म कि प्रभावना करनी है तो सर्व प्रथम रत्नत्रयरूपि आध्यात्मिक ज्योति बांटो। धर्म की प्रभावना करने के लिये दान, तपश्चरण, जिनेन्द्र पूजन को भी धर्मात्मा बनाकर धर्म की प्रभावना की जाती है।

जिस प्रकार वृक्ष की अनेक शाखा—प्रशाखायें होती हैं उसी प्रकार सम्यग्दर्शन को भी अनेक शाखा—प्रशाखायें होती हैं। कुन्द कुन्द देव अष्टपाहुङ् में आठ गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

णिंदा गरुहा संवेग य उवसम भक्ति।

वत्सल पहावणा अद्व होदि सम्मते॥

(1) निन्दा (2) गर्हा (3) संवेग (4) वैराग्य (5) उवसम (6) भक्ति (7) वात्सल्य (8) प्रभावना ये अष्टगुण सम्यग्दृष्टि के होते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं से जो दोष होता है उनकी आलोचना स्व साक्षीपूर्वक या देव, गुरु आदि पर साक्षीपूर्वक आलोचना करता है, वह स्वयं की आलोचना

करता है परन्तु दूसरों की आलोचना नहीं करता है। क्योंकि वह सोचता है कि ‘स्वयं की आलोचना करने से कर्मों की निर्जरा होती है एवं आगे के लिये दोषों से निवृत्ति होती है। परन्तु दूसरों की निंदा करने से पाप बन्ध होता है तथा परस्पर मैं वैरत्व भाव की सृष्टि होती है। इतना ही नहीं मैं स्वयं दोषी होकर दूसरों की समालोचना क्यों करूँ और कहा भी है—

बुरा जो देखने मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।

जो दिल खोजा अपना, मुझसे बुरा न कोय॥

जब एक व्यक्ति दूसरों की ओर अंगुलि करके संकेत करता है तब तीन अंगुली संकेत करती है कि है पापी! तुम उसमें भी तीन गुन अधिक पापी हो सम्यग्दृष्टि संवेग, वैराग्य सम्पन्न होने के कारण संशय शरीर भोगों से विरक्त होकर धर्म में अनुरक्त होता है। उसकी कषाये उपशमित होने के कारण वह थोड़ी-थोड़ी बात में क्षुब्धि होकर कलह-झगड़ा, वाद-विवाद नहीं करता है। वह साक्षात् वात्सल्य की जीवन्त-मूर्ति बनकर स्व-प्रभावना के साथ साथ धर्म की भी प्रभावना करता है।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग में विशेष करके — निःशक्ति, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि अंग स्वात्मनिष्ठ हैं तथा उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना समाजनिष्ठ हैं। अर्थात् पहले के चार अंग व्यक्तिगत हैं अन्त के चार अंग समाजगत हैं। पहले के चार अंगों से स्वयं का निर्माण तथा स्वयं को आदर्श बनाता है तथा अन्त के चारों अंगों के माध्यम से समाज के साथ जुड़कर समाज का निर्माण एवं उसको आदर्श बनाता है।

जिन शासन में अहिंसा प्रधान होने के कारण एवं अहिंसा के अन्तर्भूत दया, प्रेम, समता, करुणा, साम्यभाव होने के कारण, जैन धर्म सबके साथ प्रेम, मैत्री, सहकार, संगठन के साथ जीना सिखाता है। यदि जैन धर्मावलम्बी होने पर भी उपरोक्त गुण नहीं हैं तो यथार्थ से जैन धर्मावलम्बी नहीं है। फूट डालना, कलह करना, झगड़ा करना यह दुर्जनों का कार्य है, सज्जनों का काम नहीं है। नीतिकारों ने कहा भी है—

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां पर पीड़नाय।

खलस्य आद्यार्विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

दुर्जन लोग विद्या प्राप्त करके वाद-विवाद कलह करते हैं धन को प्राप्त कर घमण्डी हो जाते हैं तथा शक्ति प्राप्त कर दूसरों को पीड़ा पहुंचाते हैं, परन्तु सज्जन लोग विद्या प्राप्त करके ज्ञानी बनते हैं धन प्राप्त करके दानी होते हैं, शक्ति प्राप्त कर दूसरों की रक्षा करते हैं।

प्रकृष्ट/ उत्कृष्ट/ उदार/ निर्मल/ पवित्र/ साम्यभाव को प्रभावना कहते हैं। प्रभावना पहले स्वयं में होती है, उसके अनन्तर उसका प्रचार-प्रसार विभिन्न माध्यम से किया जाता है। रलत्रयरूपी प्रकाश से पहले स्वयं को प्रकाशित करना चाहिए उसके बाद दूसरों को प्रकाशित करना चाहिए। उसके बाद जैसे जो दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होता है वही दीपक दूसरों को प्रकाशित करता है। बुझा हुआ दीपक न स्वयं को प्रकाशित कर सकता है न दूसरों को प्रकाशित कर सकता है। प्रभावना के अनेक कारक/ कारण/उपाय होते हैं। जैसे — दान पूजा, उपवास, ज्ञान/ उत्सव/ सांस्कृतिक कार्यक्रम/ रथ यात्रा/ पंचकल्याण वेदी प्रतिष्ठा/ तीर्थयात्रा/ सत्साहित्य / धार्मिक पत्रिका आदि/ परन्तु पवित्र प्रकृष्ट भावना या महान—उदार उद्देश्य के बिना उपरोक्त कारक कारण भी वस्तुतः प्रभावना के अंग/ उपाय नहीं बन सकते हैं। जैसे अंकुरोत्पत्ति शक्ति से रहित बीज को कितना भी पानी, खाद, औषध देने पर भी उस बीज से अंकुरोत्पत्ति नहीं हो सकती है। अन्तरंग उच्छी भावना से रहित बाह्य प्रभावना की शोभा उसी प्रकार है जिस प्रकार शवयात्रा की शोभा है। नाम बढ़ाई काम के लिये जो दानादि बाह्य प्रभावना करते हैं उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कुछ व्यक्ति माता-पिता-भाई-बहेन की सेवा/ सुश्रुषा/ व्यवस्था के लिए तो बेपरवाह हैं यहाँ तक कि अपने ग्राम, नगर में आगत उत्तम पात्र स्वरूप मुनि, आर्यिका आदि को दान-मान-सम्मान नहीं देता है, ग्राम के मंदिर में पूजा, दर्शनादि नहीं करता है वो भी पंचकल्याणकादि में भीड़ देखकर लाखों रूपयों की बोली लेता है।

देवदर्शन, तीर्थयात्रा, पूजा, पंचकल्याणकादि का मुख्य उद्देश्य स्वदर्शन, अन्तर्यात्रा स्वकल्याणक के लिये है। अभी अनेक व्यक्ति धर्मकार्य को धनकार्य/ परमार्थ को अर्थोपार्जन उपाय रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अभी पंचकल्याणक तो पंचों के कल्याणक (कमेटी बालोंकी स्वार्थ सिद्धि) रूप में हो रहा है। वहाँ विशेषता: धर्म के नाम पर धन की पूजा, धर्म के नाम पर धनी की पूजा, प्रभावना के नाम

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

पर बाह्य-आडम्बर, मनमंजन (भाव निर्मल के स्थान पर मनोरंजन बेन्ड पार्टी, संगीत-नायक कार्यक्रम के अतिरेक) पंच कल्याण की मूल क्रिया के स्थान पर बोली, धनी व्यक्तियों की मान सम्मान की क्रिया होती है। धार्मिक कार्य के नाम पर पहले शोषण भी करते हैं और जो यात्री उस कार्यक्रम में आते हैं उनकी व्यवस्था नहीं करते हैं और व्यवस्था धनी लोगों की करेंगे तथा साधारण व्यक्ति की करेंगे तो शोषण करने के लिये। उसी ही प्रकार बड़े-बड़े तीर्थस्थान की भी महिमा है।

जो व्यक्ति बोली में लाखों रूपये खर्च करते हैं वे भी सत्याहित्य प्रकाशन, प्रचार प्रसार के लिए, बद्धों के धार्मिक संस्कार के लिए, धार्मिक विद्यालय-शिविर के लिए 10-20 रूपये भी दान में नहीं देंगे। मंदिर धर्मशाला, मूर्ति निमणि, पंचकल्याण जरूर रकरना चाहिए परन्तु इससे भी अधिक आवश्यक है ज्ञान-प्रचार, बद्धों में संस्कार, स्वयं का निमणि।

आज जैन लोग करोड़ों, अरबों रूपये निर्जीव मूर्ति को भगवान बनाने में खर्च करते हैं परन्तु हजारों रूपये भी सजीव बच्चों को संस्कार से महामानव या भगवान बनाने में खर्च नहीं करते हैं। मैं मंदिर, मूर्ति, पंचकल्याण का विरोधी नहीं हूँ परन्तु व्यर्थ खर्च, बाह्य आडम्बर का अवश्य विरोधी हूँ। कुछ त्यागी-ब्रती, आचार्य, उपाध्याय साधु-साधी और पंडित, प्रतिष्ठाचार्य भी आडम्बर, बोली आदि आगम विरुद्ध कार्य को कर, करवाते हैं उनकी निन्दा जैन पत्रिकाओं तक में बार-बार आती है परन्तु वे वैसे कार्य समाज के लिए करके निन्दा के पात्र बनते। कुछ निहित स्वार्थी व्यक्ति भी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए साधु का इस्तेमाल करते हैं एवं स्वार्थसिद्धि के बाद वे भी उन साधु आदि की निंदादि करते हैं तथा साधुकी सेवा व्यवस्था भी नहीं करते हैं।

धर्म की प्रभावना तथा संगठन/ प्रेम के लिए संस्था/ सभा/ समिति मण्डल मिलनादि का जन्म हुआ है परन्तु इनके माध्यम से भी समाज में फूट, वैमनस्य, द्वेष, द्वृष्टि, ईर्ष्या वैरत्व अधिक बढ़ रहा है। वे अंग्रेजों की नीति ‘फूट डाले राज करो’ को पूर्ण चरितार्थ करते हैं। संगठन की शक्ति ऐसी एक शक्ति है जिससे कष्टसाध्य कार्य भी सुख साध्य हो जाता है। इसलिए कहा है संघे शक्ति कलौ युगे अर्थात् कलियुग में संघ/ संगठन/ एकता में शक्ति है इसलिए कहा है – By uniting we stand By dividing we fall अर्थात् संगठन से हम

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

उन्नति कर सकते हैं प्रभावना कर सकते हैं जीवित रह सकते हैं, एवं विघटन से मर जायेंगे, मिट जायेंगे। इसलिए मेरी कृति संगठन के सूत्र में मैंने लिखा है।

संगठन है अमृततत्त्व, जीने और जिलाने का।
विघटन है ऐसा तत्त्व, मरने और मारने का॥

मैंने जो भारत तथा विशेष करके जैन धर्मानुयायियों के दुर्बल बिन्दुओं का अनुभव किया है वह है असंगठन/ अप्रेमभाव/ फूट/ अन्तः कलह है। इसलिए, तो कर्नाटक के अजैन बन्धु जैनियों को उलाहना देते हुए कहते हैं कि डोम्बरु कूड़दाग केट्टरु जैनरु कूड़दाग केट्टरु। अर्थात् डोम्ब यदि मिलेंगे नहीं तो खेल नहीं दिखा सकते हैं इसलिए नहीं मिलना, संगठित नहीं होना उनके लिए आपत्ति जनक है परन्तु जैन मिलेंगे तो झगड़ा करते हैं, इसलिए जैनियों को एक साथ नहीं मिलना चाहिये। रुसलिए संगठन के लिये मैंने निमोक्त एक दोहा बनाया है।

हम सबके, सब हमारे यह ही एकता का नारा है।

आत्मपत्र भाव सर्व भूतेषु, यह मंत्र सबसे प्यारा है॥

धर्म की प्रभावना के लिये अनेक जैन पत्रिकायें निकलती हैं परन्तु उसमें विशेषतः स्व की प्रशंसा एवं दूसरों की निन्दा निकलती है तथा विज्ञापन की आड़ में धन प्रभावनार्थ व्यसन प्रभावना करते हैं और चुटकी, गुटका, शीतल पेय आदि से अलौकिक सुख व ताजगी दिलाना चाहते हैं। किसी की भूल सुधार करना अवश्य चाहिए परन्तु पत्रिका में नाम देकर निन्दात्मक लेख नहीं निकालना चाहिये। इससे स्वयं की, दोषी धर्म की अप्रभावना होती है। जैसे माता, पुत्री आदि के गुप्तांग में रोग होने पर उसकी योग्य चिकित्सा एकान्त में करना चाहिए परन्तु सबके सम्मुख खोलकर उस अंग को नहीं दिखलाना चाहिए। सामान्य रूप से नाम दिये बिना गुण दोष की समीक्षा, समाधान पत्रिका में देना चाहिए इसमें रचनात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है परन्तु नाम देने से विपरीत प्रभाव पड़ता है।

आत्म कल्याण के लिये व्रत-नियम-दीक्षादि योग्य पात्र को अवश्य देना चाहिए परन्तु अयोग्य पात्र को नहीं देना चाहिए। क्योंकि जैन धर्म, जैन व्रत जैन दीक्षा स्वेच्छाचार विरोधिनी है। जैसे आहारादि दान कुपात्र को देने से विपरीत फल मिलता है। इस कार्य से उसमें भी अधिक भयंकर फल इहलोक में पर लोक में गुरु शिष्य समाज को मिलता है। लोभ से शिष्य बनाना भी सचित्त परिग्रह है

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

एवं परिग्रह पाप का कारण है एवं पाप पतन का कारण है। आचार्य-उपाध्याय साधु-साध्वी-क्षुद्रकादि का मुख्य कर्तव्य है कि, ध्यान-अध्ययनादि से आत्मकल्याण करना तथा समयानुसार परोपकार भी करना। परन्तु आत्म कल्याण को छोड़कर स्व आत्म सिद्धि को छोड़कर प्रसिद्धि के लिए संस्था, चंदा चीटा में नहीं लगना चाहिए। क्योंकि इसमें परिग्रह संचय संरक्षणादि होता है, राग द्वेष होता है, निन्दा अप्रभावनादि होती है जो कि आत्म पतन के कारण हैं। इसी प्रकार परिग्रह गाड़ि, चौका, नौकरादि नहीं रखना चाहिए। मंत्रादि का प्रयोग स्वार्थ के लिये नहीं करना चाहिये। परन्तु धर्म की प्रभावनार्थ कर सकते हैं धर्म प्रभावना के लिए चरित्र भ्रष्ट राज नेताओं को धार्मिक कार्यक्रम में निमंत्रण देना वर्तमान में आधुनिकता, फैसन, गौरव, स्वार्थसिद्धि, भीड़ इकट्ठा करने का साधन मानने लगे हैं। यदि कोई कार्यक्रम में नेता, अभिनेता, (संगीतकार, नाटककारादि) नहीं आते हैं तो उस कार्यक्रम को फीका मानने लगते हैं। उसके लिये भेड़ चालों की भीड़ भी लगती है। सहज रूप से यदि धर्म की भावना लेकर आते हैं उन्हीं का स्वागत करो न कि अपनी प्रदर्शनी/ प्रसिद्धि/ प्रभावना के लिए या आपकी स्वार्थसिद्धि के लिये आते हैं उनका/ मेरा भाव यह नहीं है कि पंचकल्याणादि न करें, दानादि न दे परन्तु धर्म भाव से करें/ पंचकल्याणकादि में जो आवश्यक कार्य, खर्च हैं उसके लिये स्वार्थत्याग/ दान भाव/ सेवा भाव/ से स्वशक्ति के अनुसार प्रदर्शन के बिना तन, मन, धन समय से सहकार करें, योगदान दें। जो जितना अधिक से अधिक योगदान करेगा उसको उतना ही धर्म लाभ/ पुण्य लाभ होगा। यदी उसका प्रतिफल है।

साधु आदि के पिच्छी, कमण्डल, केशलोंच, शास्त्रादि उपकरण की बोली न स्वयं लगाए, न लगवाएँ और न श्रावक को लगाने दे बल्कि जो व्रतादि स्वीकार करेगा उसके हाथों से समर्पण करवाना चाहिये। साधु को अपनी प्रसिद्धि के लिए जन्म जयन्ति नहीं मनवाना चाहिये। साधु विश्व के सर्वश्रेष्ठ आदर्श पुरुष होते हैं उन्हें कलंकित नहिं करना चाहिये। अन्य धर्मात्माओं को भी साधुओं को आदर्श रखना चाहिए एवं उन्हीं को सेवा करनी चाहिये। साधु व्रती के बाद पंडित का स्थान महत्वपूर्ण है परन्तु अनेक पंडित जिनवाणी माता को बेचते रहते हैं एवं पंथवाद को उकलाते रहते हैं। विद्या ददाति विनयं के विपरीत इनका एक मुख्य लक्षण अहंकार है। उनका जीवन साधारण जन से भी पतित, निन्दनीय, अंधकारपूर्ण

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

रहता है वे उपदेश देते हैं टन भर। सुनते हैं/ मन भर, ग्रहण करते हैं क्षण भर चलते हैं न कणभर नीतिकार ने कहा भी है—

**सुलभा धर्मवक्तारो यथा पुस्तक वाचकाः।
ये कुर्वन्ति स्वयं धर्म विरलास्ते महीतते॥**

विश्व में पुस्तक पढ़ने के समान धर्म का उपदेश करने वाले सुलभ हैं परन्तु जो स्वयं धर्म का आचरण करते हैं वे दुर्लभ हीते हैं। जैन धर्म एक सार्वभौम, स्वातंत्र्य, वैज्ञानिक, गणितीय सर्वजनहिताय सर्व जन सुखाय त्रिकाल अबाधित वस्तु स्वभावात्मक धर्म है। जैन धर्म में विश्व के समस्त ज्ञान-विज्ञान, कला-विद्या विभिन्न विधाओं के सूत्र भरे हुये हैं। परन्तु इस वैज्ञानिक, तार्किक, शोध-बोध के युग में भी जैन साधु - साध्वी, श्रावक-पंडितादि कोई विशेष युगानुकूल वैज्ञानिक शोध करके धर्म का प्रचार नहीं कर रहे हैं। रटे-रहैया, घिसे पिटैपा, लकीर के फकीर बनकर रुद्धिवादी बनते हैं। विज्ञान के पास प्राचीन विरासत नहीं होने पर भी तथा अन्य मत मतान्तर में वैज्ञानिक तथ्य अधिक नहीं होने पर भी उसके अनुयायी जितने आगे बढ़ रहे हैं इसके अनुपात में जैनियों की गति अति ही मंद है और जो इस शोधपूर्ण कार्य को कर रहे हैं उसको भी विशेष सहायता या सराहना नहीं मिल रही है।

वर्तमान में भीड़ को प्रभावना मानते हैं, अच्छी बोली होने पर अच्छा पंचकल्याणक मानते हैं, शादी, विवाह, प्रीतिभोज (पार्टी) में मद्यपान, धुम्रपान, वेश्यानाच, ब्लू फिल्म देखने को आधुनिकता मानते हैं। हिंसात्मक प्रसाधन यथा नेलपालिस, लिपिस्टिक, सेम्पू, चमड़े की वस्तुओंका प्रयोग होटल बाजार में खड़े होकर खाना, बफे सिस्टम, बाजार में लावारिस के समान धूमने को फैशन मानते हैं, आधुनिक जैनियों के आधुनिक षट् कर्तव्य निम्न प्रकार हो गये हैं।

**पेट पूजा धनोपास्ति सिगरेट बूटपालिस।
होटल सिनेमाश्चेति षट् कर्तव्य निम्न प्रकार हो गये हैं।**

सत्य अहिंसा और प्रेम से बस इतना हमारा नाता है।

दिवारों पर लिखवा लेते हैं दिवाली पर पुतवा देते हैं।

वर्तमान काल में अधिकांश व्यक्ति निम्न कारणों से धर्म करते हैं

भय दक्षिण्य कीर्ति च लज्जा आशा तथ्यैव च।

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

पंचाभि पंचमकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते ॥

पंचम काल में लोग जैन धर्म को (1) लोक भय से (2) अपनी योग्यता का प्रदर्शन के लिये (3) कीर्ति के लिये (4) लज्जा से (5) आशा से पालन करेंगे।

परन्तु विशेष ध्यान देने योग्य विषेय यह है कि जैन धर्म की धारा पंचम काल के अंत तक अविच्छिन्न रूप से चलती रहेगी। अतः स्वतः सिद्ध हो जाता है कि इसमें भी धार्मिक व्यक्ति होते रहेंगे भले उनकी संख्या एवं मात्रा काम क्यों न हो। इस विपरीत काल में भी जो व्यक्ति सद्व हृदय से धर्मपालन करेंगे वे अत्यन्त महान हैं। क्योंकि अनुकूलन स्त्रोत में नौका को खेकर ले जाना सरल है परन्तु प्रतिकूल स्त्रोत में खेकर ले जाना दुस्कर है इसलिए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि चतुर्थ काल की 100 वर्ष की तपस्या के बराबर पंचमकाल की 1 वर्ष की तपस्या है। अर्थात् चतुर्थ काल में जिस धर्म कार्य को करने से जितना फल मिलता था वर्तमान में उस धर्म कार्य का एक शतांश करने पर वही फल मिलेगा। इसलिए पूर्वाचार्यों ने कहा है—

धन्या भारतवर्ष संभवजना योऽद्यापि काले कलौ।

निस्तीर्थेश्वर केवले निरवद्यो भ्रश्यन्मनः पर्यये।

त्रुट्यच्छोत्र विशेष संपदि भव दौर्गत्य दुखापदि।

श्री जिनेन्द्रवचोनुरागवशतः कुर्वित धर्मोद्यतम् ॥

वर्तमान घोर पंचम कलिकाल में तीर्थकर, केवली, अवधि, मनःपर्याय ज्ञान का अभाव है। योग्य, श्रोताओं का भी अभाव है, विशेष वैभव से रहित, दरिद्रता आदि संकट से सहित कलियुग के मनुष्य हैं। इस प्रकार विपरीत (विषम) कलियुग में भी श्री जिनेन्द्र देव के वचनानुसार धर्म में जो उद्यत होते हैं वे अत्यंत अभिवंदनीय, एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

भव्य/योग्य मन-वचन-काय की प्रवृत्ति ही भद्रता/शालीनता है। इससे युक्त व्यक्ति सुगंध के समान है, जो दूसरों को भी आहलादित कर देता है।

आचार्य कनकनंदीजी

अध्याय-5

मोक्ष मार्ग में सम्यग्ज्ञान की भूमिका

जं अण्णाणी कम्मं ख्वेदि भवसय सहस्स कोडीहिं ॥

तं णाणी तिहिं गुत्तो ख्वेदि उस्सास मेत्तेण ॥२३८॥

(प्रवचनसार)

परमात्म ज्ञान रहित पुरुष जो ज्ञानावरणादि अनेक कर्म को सौ हजार करोड़ पर्यायों को करके क्षय करता है, मन, वचन, काय की क्रियाओं के निरोध कर स्वरूप में लीन परमात्म भाव का अनुभवी ज्ञाता उन ज्ञानावरणादि असंख्यात लोकमात्र कर्मों को एक उच्छ्वास मात्र काल में ही क्षय कर देता है।

निर्विकल्प समाधिरूप निश्चय रलत्रयात्मक विशेष भेद ज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जीव में जिस कर्म बन्ध को क्षय करता है उस कर्म को ज्ञानी जीव तीन गुणित में गुप्त होकर एक उच्छ्वास में नाश कर डालता है। इसका भाव यह है कि बाहरी पदार्थों के सम्बन्ध में जो सम्यग्ज्ञान परमागम के अभ्यास के बल से होता है तथा जो उनका श्रद्धान होता है और श्रद्धान ज्ञानपूर्वक व्रत आदि का चारित्र पाला जाता है, इन तीन रूप रलत्रय के आधार से सिद्ध परमात्मा के स्वरूप में सम्यक् श्रद्धान तथा सम्यग्ज्ञान होकर उनके गुणों का समरण करना इसी के अनुकूल जो चारित्र होता है। फिर भी इसी प्रकार इन तीन के आधार से जो उत्पन्न होता है। निर्मल अखण्ड एक ज्ञानाकार रूप अपने ही शुद्धात्मा में जानने रूप सविकल्पज्ञान तथा “शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है” ऐसी रुचि सो विकल्प रूप, सम्यग्दर्शन और इसी ही आत्मा के स्वरूप में रागादि विकल्पों से रहित सो सविकल्प चारित्र उत्पन्न होते हैं फिर भी इन तीनों के प्रसाद से विकल्प-रहित समाधिरूप निश्चय रलत्रय विशेष स्वसंबेदन ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्म में जिस कर्म का क्षय करता है उस कर्म को पूर्वोक्त ज्ञानी जीव पूर्वोक्त ज्ञान गुण के सद्भाव में मन, वचन, काय की गुणित में लवलीन होकर एक श्वास मात्र में लीला मात्र से ही नाश कर डालता है। इससे यह बात जानी जाती है कि परमागम ज्ञान, तत्वार्थ श्रद्धान

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमाण

तथा संयमीपना इस भेद रलत्रय के होने पर भी अभेद या निश्चय रलत्रय स्वरूप स्वसंवेदन ज्ञान की ही मुख्यता है।

जेण तच्चां विबुद्धेज्ज जेण चितं पिरुज्जादि?

जेण अता विसुद्धेज्ज तं पाणं जिण सासणे॥267॥

(मूलाचार)

जिससे तत्व का बोध होता है जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होती है। जिसके द्वारा वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाना जाता है जिसके द्वारा मन का व्यापार रोका जाता है अर्थात् मन अपने वश में किया जाता है, जिसके द्वारा आत्मा शुद्ध हो जाती है, जीव वीतराग हो जाता है वह ज्ञान जिनशासन में प्रमाण अर्थात् विपर्यय, अनध्यवसाय और अकिञ्चित्कर से रहित है।

जेण रागा विरज्जेज्ज णेण सेएसु रज्जदि।

जेण मित्तीं पभावेज्ज तं पाणं जिणसासतो॥269॥

(मूलाचार)

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है जिन शासन में वह ज्ञान कहा गया है।

जिसके द्वारा जीव राग—स्नेह से और काम—क्रोध आदि से विरक्त होता है—पहाड़मुख होता है और जिसके द्वारा मोक्ष में अनुरक्त होता है, जिसके द्वारा मैत्री भावना अर्थात् द्वेष का अभाव करता है जिन शासन में वही ज्ञान है। तात्पर्य यह हुआ।

अतत्व में तत्व बुद्धि, अदेव में देवता का अभिप्राय, जो आगम नहीं है उनमें आगम की वृद्धि अचारित्र में चारित्र की बुद्धि और अनेकान्त में एकान्त की बुद्धि यह ज्ञान अज्ञान है।

णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी णवं च णादियदि।

णाणेण कुणदि चरणं तद्वा णाणे हवे विणओ॥580॥

॥ मूलाचार ॥

ज्ञानी जानता है, ज्ञानी छोड़ता है और ज्ञानी नवीन कर्म को नहीं ग्रहण करता है। ज्ञान से चारित्र का पालन करता है इसलिये ज्ञान में विनय होवे।

66

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमाण

यस्माज्जानी गच्छति मोक्षं जानाति वा गतेज्ञानगमन प्राप्त्यर्थकत्वात् यस्माच्च ज्ञानी वंचति, परिहरति पापं यस्याच्च ज्ञानी नव कर्म न ददाति न बध्यते कर्माभिरिति यस्माच्च ज्ञानेन करोति चरणं चारित्रं तस्माच्च ज्ञान भवति विनय कर्तव्य इति।

जिस हेतु से ज्ञानी मोक्ष प्राप्त करता है अथवा जानता है गति अर्थ वाले धातु ज्ञान गमन और प्राप्ति अर्थ वाले होते हैं, ऐसा व्याकरण का नियम है। अतः यहाँ गच्छति का जानना और प्राप्त करना अर्थ किया है। जिससे ज्ञानी पाप की वंचना—परिहार करता है और नवीन कर्मों से नहीं बंधता है तथा ज्ञान से चारित्र को धारण करता है इसीलिये ज्ञान में विनय करना चाहिए।

णाणं स्विखदि पाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि।

णाणेण कुणदि णाणं पाणं विणीदो हवदि एस्तो॥368॥

(मूलाचार)

ज्ञान शिक्षित करता है, ज्ञान गुणी बनाता है, ज्ञान पर को उपदेश देता है ज्ञान से न्याय किया जाता है। इस प्रकार यह जो करता है वह ज्ञान से विनम्र होता है।

ज्ञान विद्या को प्राप्त करता है। ज्ञान अवगुण को गुण रूप से परिवर्तीत करता है। ज्ञान पर को उपदेश का प्रतिपादन करता है। ज्ञान न्याय—सत्यवृत्ति करता है जो ऐसा करता है वह ज्ञान विनीत होता है।

न हि सम्यग्यपदेशं चरित्रमज्ञानं पूर्वकं लभते।

ज्ञानान्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात् ॥35॥

पुरुषार्थः

अज्ञानपूर्वक चारित्र सम्यक् चारित्र नहीं होता है। इसीलिये सम्यक्ज्ञान के अनन्तर—चारित्राराधना का कथन किया गया है।

‘नाणम्मि असंतमि चरित्रं वि न विज्जए।’

ब्यवहार भाष्य 1-2-7

जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ चारित्र भी नहीं रहता।

सब जगुज्जोयकरं नाणं, नाणेण नज्जए चरणं।

ब्यवहार भाष्य 7-2-6

67

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

ज्ञान विश्व के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है। ज्ञान से ही मनुष्य को कर्तव्य का बोध होता है।

“सुयस्त आराहणपाए णं अन्नाणं ख्वेऽवदे।”

उत्तराध्ययन 29-99

ज्ञान की अराधना करने से आत्मा अज्ञान का नाश करती है।

विन्नावेण समागम्य धम्मसाहणमिच्छिउ।

उत्तराध्ययन 23-3

विज्ञान के द्वारा धर्म के साधनों का उचित निर्णय करना चाहिए।

पठमं नाणं तओ दया एवं चिद्वृई सब्वसंजेण।

अज्जन्नाणी किं काही किंवा वाहिइ षेय पावर्णौ॥

दशविकालिक 4-10

(ज्ञान) पहले सम्यग्ज्ञान होना चाहिए उसके उपरांत सम्यक्ज्ञान के अनुसार दया पालन करना चाहिए अर्थात् सम्यक्चारित्र पालन करना चाहिए। इसी प्रकार चारित्र सम्पूर्ण संयमियों को आचरण करने योग्य है। अज्ञानी कभी इस प्रकार श्रेय (आचरणीय), पापात्मक अश्रेय को जाना सकता है अर्थात् बिना ज्ञान करणीय-अकरणीय का विवेक नहीं होने से अज्ञानी यथार्थ चारित्र पालन नहीं कर सकता है। इसलिये कहा है—

“बिना जानते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।”

सम्यग्ज्ञान की महानता का वर्णन करते हुए अमृत कलश में बताते हैं कि—

भेद विज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन।

तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥7॥

जो अनन्तानं सिद्ध हुए हैं वे सब भेद विज्ञान से सिद्ध हुए हैं। जो बंधे हुए हैं वे भेद विज्ञान के अभाव के कारण बंधे हुए हैं। इसलिये कविवर दौलतरामजी ने छहड़ाला में कहा है—

ज्ञान समान न आज जगत में सुख को कारण।

इह परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण॥ चतुर्थढाल

आत्म हित के लिए सम्यग्ज्ञान की उपासना

इत्याश्रित-सम्यक्त्वैः सम्यग्ज्ञानं निरुप्य यत्नेन।

आन्नाय युक्ति- योगैः समुपास्यं नित्यमात्महितैः॥31॥

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

सम्यक्त्व का ज्ञान करके यहाँ पर ज्ञान स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। पुनः आत्म के हित के लिए आत्महितकांक्षियों को सदैव सम्यक्ज्ञान का सम्यक् रूप से सेवन करना चाहिए। प्रयत्न रूप से अष्टांग लक्षण सहित सम्यक्त्व से युक्त होकर आत्महित के लिए आन्नाय अर्थात् सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की परम्परा तथा युक्ति से सहित होकर सम्यक्ज्ञान की सेवा अर्थात् प्राप्ति करनी चाहिए।

न्याय ग्रन्थ के रचयिता आचार्य श्री माणिक नंदी ने इसी सत्य को ज्ञान रूप से उजागर किया है।

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।

जिससे हित की प्राप्ति, अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

“अज्ञान निवृत्तिनोपादानोपेक्षाश्च फलम्”

(परीक्षामुख)

अज्ञान की निवृत्ति, अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

दर्शन और ज्ञान में भेद

पृथग्गाराधनमिष्टं, दर्शन-सहभाविनोऽपि बोधस्य।

लक्षण-भेदेन यतो, नानात्वं संभावत्यनयोः॥32॥

सम्यक्दर्शन सहभावि अर्थात् सह-उत्पादन ज्ञान होते हुए भी ज्ञान की आराधना अर्थात् सेवन पृथक् से करना इष्ट है। जब सम्यक्दर्शन होता है तभी सम्यक्ज्ञान होता है। अतः व्यवहार अपेक्षा से लक्षण भेद से दोनों सम्यक्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञान में भिन्नता संभव होता है, सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के लक्षण में भिन्नता पाई जाती है। इसलिए सम्यक्दर्शन एवं सम्यक्ज्ञान दोनों भिन्न हैं।

दोनों में कार्य-कारण का भाव

सम्यग्ज्ञानं कार्यं, सम्यक्त्वकारणं वदन्ति जिनाः।

ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानन्तरं तस्मात्॥33॥

सर्वज्ञ भगवान ने बताया है कि सम्यक्त्व कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है क्योंकि पूर्व भावि कारण है पश्चात् भावि कार्य है। इसलिए सम्यक्दर्शन को

69

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

कारण कहा गया है तथा सम्यकज्ञान को कार्य कहा गया है। अतएव सम्यकत्व के बाद ज्ञान की आराधना वांछनीय है। इस रहस्य को प्रकट करने के लिये यहाँ पर कार्य कारण सिद्धान्त का कथन किया गया है।

समकाल में होनेवाले कार्य-कारण का दृष्टान्त
कारण-कार्य-विधानं, समकालं जायमानयोरपि हि।

दीप प्रकाशयोरिव सम्यकत्वं ज्ञानयोः सुघटम् ॥३४॥

निश्चय से एक ही काल में एक साथ उत्पन्न होने पर भी सम्यक्दर्शन एवं सम्यकज्ञान परस्पर कार्य कारण रूप में उत्पन्न होते हैं। उसी को ही दृष्टान्त के द्वारा दृढ़ करते हैं। जिस प्रकार दीपक को प्रज्ञविलित करते ही प्रकाश फैलता है एवं अन्धकार दूर होता है। प्रकाश होना एवं अन्धकार दूर होना, एक साथ होते हुए भी प्रकाश कारण है एवं अन्धकार दूर होना कार्य है, उसी प्रकार सम्यक्दर्शन के कारण ज्ञान सम्यक्ज्ञान होता है। इसलिए सम्यक्दर्शन कारण है एवं सम्यक्ज्ञान कार्य है।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

कर्तव्योऽध्यवसायः सदनेकान्तात्मके षु तत्त्वेषु।
संशय-विपर्ययानध्यवसाय विविक्तमात्मरूपं तत् ॥३५॥

सम्यक्टृष्ण भव्यों के द्वारा जीवादि तत्त्वों या पदार्थ में अध्यवसाय करना चाहिए। अर्थात् जीवादि पदार्थों का परिज्ञान करना चाहिए। यह परिणाम प्रसिद्ध आत्मा का स्वभाव है। अनेकान्तात्मक अर्थात्, अनित्य, नित्य आदि विरोधात्मक अनन्त गुण से युक्त (वस्तु का) परिज्ञान करना चाहिए। इस वस्तु तत्त्व की कथन प्रणाली सप्तभंगी है। आत्म स्वरूप संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित है। यह खम्भा है या मनुष्य है इस प्रकार का दुरात्मक ज्ञान संशय है। पदार्थ को विपरीत जानना विपर्यय है। जैसे – सीप को चाँदी रूप में जानना। सम्यकविचार से रहित अनध्यवसाय ज्ञान है। जैसे-चलते हुए पथिक के पैर में कुछ स्पर्श हुआ। उसे निश्चित ज्ञान नहीं हुआ कि यह स्पर्श धास का हुआ या पत्थर का। इस ज्ञान को अनध्यवसाय ज्ञान कहते हैं। इन तीनों ज्ञान से रहित अनेकान्तात्मक यथार्थ ज्ञान को सम्यकज्ञान कहते हैं।

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

सम्यग्ज्ञान के आठ अंग

ग्रन्थार्थोभय-पूर्ण काले विनयेन सोपधान च।
बहुमानेन समन्वितमनिहव- ज्ञानमाराध्यम् ॥३६॥

जिसका मिथ्यात्व गलित हो गया है, ऐसे भव्य के द्वारा अनिहव से युक्त तथा संशय आदि से रहित होकर के सत्य रूप से ज्ञान की आराधना करनी चाहिए। ज्ञान की आराधना अर्थात् प्राप्ति ग्रन्थ, अर्थ, ग्रन्थ सहित अर्थ, काल, विनय, उपधान, बहुमान से युक्त होकर करनी चाहिए। धर्म प्रश्नोत्तर ग्रन्थ में कहा भी है— शुद्ध, शुभ उच्चारण से युक्त होकर शास्त्रों का अध्ययन करना व्यंजनाचार है। शास्त्र का अध्ययन शुद्ध उच्चारण युक्त करते हुए उसके अर्थ को समग्रता से सही-सही समझना अर्थाचार है। शब्द के साथ-साथ अर्थ और दोनों की शुद्धि पूर्वक अंगादि सिद्धान्त शास्त्रों का अध्ययन करना शब्दार्थोभयाचार है। त्रिसंध्या आदि अकाल को छोड़कर योग्य समय में विनयशील युक्त होकर अध्ययन करना कालाचार है। श्रुतभक्ति आदि पूर्वक स्तुति, अवनति, नम्रता आदि से युक्त होकर शास्त्रों का पठन करना विनयाचार है। सिद्धान्त अध्ययन समय में सज्जनों के द्वारा रस, वस्तु आदि का त्याग किया जाता है, उसे उपधान कहते हैं। गुरु शास्त्र के सद्गुण आदि का प्रकाशन करना, उनका गुणगान करना, उनकी पूजा करना आदि अनिहव है। ज्ञानाभ्यास में जिससे ज्ञान प्राप्त करते हैं उनकी पूजा, उनको प्रणाम करना तथा उच्च आसन आदि देना बहुमान है। इसी प्रकार अष्ट गुण से युक्त होकर ज्ञान आराधना करनी चाहिए।

समीक्षा: आचार्य श्री ने इस श्लोक में ज्ञान प्राप्ति के लिए अनिवार्य बाह्य कुछ कारकों का/उपायों का दिग्दर्शन किया है। ज्ञानार्थी में जब तक पात्रता नहीं आती है तब तक वह ज्ञान को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है।

जो विनयादि गुण से युक्त होकर शास्त्र अध्ययन करता है वह तो ज्ञानार्जन कर पाता है उसके साथ-साथ उसका ज्ञान सम्यकज्ञान तथा गुणकारी ज्ञान होता है। ऐसे ज्ञान ही परम्परा से मोक्ष के लिए कारण बनता है। कहा भी है—

विणएण सुदमधीदं जदिवि पमादेण होदि विस्सरिदं।

तमुवद्वादि परभवे केवलणाणं च आवहदि ॥२८६॥

विनय से पढ़ा गया शास्त्र यद्यपि प्रमाद से विस्मृत भी हो जाता है तो भी

वह परभव में उपलब्ध हो जाता है और केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है।

विनय से जो शास्त्र पढ़ा गया है, प्रमाद से यदि उसका विस्मरण भी हो जावे तो अन्य जन्म में यह सूत्र ग्रन्थ उपस्थित हो जाता है, स्मरण में आ जाता है। और वह पढ़ा हुआ शास्त्र केवलज्ञान को भी प्राप्त करा देता है इसलिए काल आदि की शुद्धि पूर्वक शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए।

महावीर भगवान के शिष्य गौतम गणधर ने भी कहा है— तथ्य णाणायारोः काले, विणये, उवहाणे, बहुमाणे तदेव अणिणहवे, विजंण—अत्थतदुभये चेदि, णाणायारो, अद्विविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं वा सरहीणं वा विजंणहीणं वा, पदहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थवेसु वा, थुईसु वा, अत्थक्षाणेसु वा, अणियोगदारेसु वा, अकाले वा, सञ्ज्ञाओ कदो वा, कारिदो वा, किरंतो वा, समणुमणिदो, काले वा परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं आमेलिंद वा मेलिंद, अणहादिणं, अणहापाडेच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कड़॥

उस पाँच प्रकार के आचार में पहला ज्ञानाचार है। उसके 1. मतिज्ञान 2. श्रुतज्ञान 3. अवधिज्ञान 4. मनःपर्ययज्ञान और 5. केवलज्ञान। इस प्रकार ज्ञान के पाँच भेद होते हुए भी यहाँ पर श्रुतज्ञान का ही ग्रहण है, क्योंकि उसी का कालादि आठ प्रकार से आचरण सम्भव है। श्रुतज्ञानाचार आठ प्रकार का है। 1. सन्ध्या, सूर्य का या चन्द्र का ग्रहण, उल्कापात (वज्रपात या उल्का का टूटना) आदि अकालों को छोड़कर योग्य कालों में शास्त्र का पठन—पाठन, श्रवण (सुनना), श्रावण (सुनाना) चिन्तवन, परिवर्तन व्याख्यानादि करना कालाचार हैं। 2. पर्याकादि सुखासनों से बैठकर कायिक, (काय सम्बन्धी) वाचिक (वचन सम्बन्धी) शुद्ध परिणामों से पठन—पाठन आदि करना विनयाचार है। 3. अवग्रह (नियम) विशेषपूर्वक पठन—पाठनादि करना उपधानाचार है। 4. ग्रन्थ पुष्ट आदि अष्ट द्रव्य से पूजा और सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और गुरुभक्तिरूप भाव—पूजा पूर्वक पठन (पढ़ना) एवं पाठन (पढ़ाना) आदि करना बहुमानाचार है। 5. जिस गुरु से पढ़ा है उस गुरु का नाम न छिपाकर उसी का नाम कहना या जिस शास्त्र पढ़कर ज्ञानी हुआ है उसे न छिपाकर उसी शास्त्र का नाम बताना अनिन्हवाचार है। 6. वर्ण,

पद, वाक्य की शुद्धिपूर्वक शास्त्रों का पठन—पाठनादि व्यंजनाचार है। 7. अर्थ के अनुकूल पठन—पाठनादि करना अर्थाचार है। 8. तथा शब्द और अर्थ की शुद्धि पूर्वक पठन—पाठनादि करना उभयाचार है। 1. काल 2. विनय 3. उपधान 4. बहुमान 5. अनिन्द्रव 6. व्यंजन शुद्ध 7. अर्थशुद्ध 8. उभयशुद्ध इस प्रकार 8 प्रकार का ज्ञानाचार है। उसका अनेक तीर्थकर देवों के गुणों का वर्णन करने वाली स्तुतियों में चारित्र और पुराणरूप अर्थाख्यानों में, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार अनुयोगों में, कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारों में (क) स्वरहीन (ख) सुबन्ततिडन्तपद से हीन (ग) ककारादि व्यंजनहीन, (घ) अर्थहीन (ङ) वाक्य अधिकारादि रहित, ग्रन्थहीन, पठन—पठनादि करके परिहापन क्रिया (आवश्यकता में कमी की) सन्ध्या, ग्रहण, उल्कापादादि अस्वाध्याय काल में आगम (सिद्धान्त) का स्वाध्याय किया, कराया और दूसरे को करते हुए की अनुमोदना की, आगम में विहित (बतलाते हुए) गोसर्गिकाहिकाल में स्वाध्याय किया, बिना विचारे श्रुत का जल्दी—जल्दी उच्चारण किया, किसी अक्षर या शब्द को किसी अविद्यमान अक्षर या शब्द के साथ मिलाया, शास्त्र के अन्य अवयवों को किसी अन्य अवयव के साथ जोड़ा, उच्च ध्वनि युक्त पाठ को नीच ध्वनि वाले पाठों के साथ और नीच ध्वनियुक्त पाठ को उच्च ध्वनि वाले पाठ से जोड़कर पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया, छः आवश्यकों में उनके कालानुसार अनुष्ठान कर, परिहीनता (कमी) करके ज्ञानाचार का परिहापन किया, उस ज्ञानाचार परिहापन सम्बन्धी मेरे दुष्कृत में विफलता हो। यथा—

नन्दी सूत्र में भी कहा है जो श्रुतज्ञान भक्ति से युक्त है वही वास्तविक श्रुतज्ञान है और उससे ही आत्मकल्याण होता है।

आगमसत्यग्रहणं, जं बुद्धिगुणेहि अदृहि दिट्ठं ।

विंति सुयणाणलंभं, तं पुब्विसारया धीरा ॥ (94) ॥ (नन्दीसूत्र पृ. 484)

सम्यक्श्रुत को भी बुद्धि के आठ गुणों के साथ ग्रहण किया गया हो, तभी वास्तविक श्रुतज्ञान का लाभ है (अन्यथा नहीं)।

‘पूर्व विशारद’ दृष्टिवाद के पाठी, धीर—उपसर्ग आदि के समय भी व्रत प्रत्याख्यानों को दृढ़तापूर्वक पालने वाले संत भगवंत कहते हैं कि—

जो आगमशास्त्रों का (जिसको जीवादि तत्वों का सम्यक् यथार्थ बोध हो, ऐसे सम्यक् श्रुत का) ग्रहण है वही वास्तविक श्रुतज्ञान का लाभ है। मिथ्याश्रुत ग्रहण, वास्तविक श्रुतज्ञान का लाभ नहीं।

जिससे जीवादि तत्वों का यथार्थ सम्यक् बोध होता है, ऐसे सम्यक् श्रुत रूप आचारांग आदि तथा इन से विपरीत मिथ्याश्रुत परिचय पहले ही दिया है। अब सूत्रकार, बुद्धि के आठ गुणों को बतलाते हैं।

1. सुस्सूसइ 2. पडिपुच्छई 3. सुणेइ 4. गिणहइय 5. ईहएयाणि । 6. तत्तो अपोहए वा, 7. धारेइ 8. करेइ वा सम्म ॥९५॥

(1) जो 'शुश्रुषा करता है'— गुरुदेव जो कहते हैं उसे विनय युक्त होकर सुनने की इच्छा रखता है एकाग्र होकर सुनता है। (2) प्रतिपृच्छा करता है— सुनते हुए श्रुत में जहाँ शंका हो जाये, वहाँ अति नम्र वचनों से गुरुदेव के हृदय को आलहादित करता हुआ, 'पूछता' है। (3) 'सुनता है'— पूछने पर गुरुदेव जो कहते हैं उन शब्दों से वित्त को डोलायमान न करते हुए सावधान चित्त हो सुनता है। (4) 'ग्रहण करता है' उन शब्दों को सुनकर उनके अर्थों को समझता है। (5) 'ईहा करता है' गुरुदेव के पूर्व कथन और पश्चात् कथन में विरोध न आवे, इस प्रकार सम्यक् पर्यालोचन करता है। (6) 'अपोह करता है'— विचारणा के अन्त में गुरुदेव जैसा कहते हैं, तत्त्व वैसा ही है, अन्यथा नहीं, इस स्वमति में सम्यक् निर्णय करता है (7) 'धारण करता है' वह निर्णय कालान्तर तक स्मरण में रहे, इस प्रकार उसकी धारणा (अविच्युति) करता है। (8) 'करता है' श्रुतज्ञान में जिसे त्याग करना कहा है उसका त्याग करता है, जिसकी उपेक्षा करना कहा है, उसकी उपेक्षा करता है जिसका धारण कहा है, उसे धारण करता है।



अध्याय - 6

मोक्षमार्ग में सम्यक् चारित्र की भूमिका

लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए पहले लक्ष्य का निश्चय तथा लक्ष्य प्राप्ति करने का परिज्ञान के साथ-साथ लक्ष्य पर पहुँचने के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। लक्ष्य पर पहुँचने रूप पुरुषार्थ के बिना केवल लक्ष्य का निश्चय एवं परिज्ञान लक्ष्य बिन्दु पर पहुँचने के लिए अकिञ्चित्कर हो जाते हैं। कुंदकुंद— स्वामी ने परिनिर्वाण रूप लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए कैसे पुरुषार्थ करना चाहिये इसे बताते हुए मोक्ष अधिकार में कहते हैं—

जहणाम कोवि पुरिसो बंधन यहि चिरकाल पडिबद्धो।

तिव्यं मंद सहावं कालं च वियाणदे तेस्सिं ॥३०८॥

जदि णवि कुब्बदि छेदं ण मुंचदि तेण कम्मबंधेण।

कालेण दु बहुगेणवि ण सो-णरो पावदि विमोक्खं ॥३०९॥

इयं कम्मबंध णाणं पदेसपयडिट्ठीय अणुभागं।

जांणतोवि ण मुंचदि मुंचदि सब्बे जदि विसुद्धो॥३१०॥

जैसे कोई पुरुष चिरकाल से बंधन में बंधा हुआ है तथा उस बंधन के तीव्र या मंद स्वभाव को भी जानता है एवं उसके काल को भी जानता है कि वह इतने दिन से है फिर भी यदि उस बंधन को छेद नहीं करता है तो वह बंध में पड़ा हुआ पुरुष बहुत काल हो जाने पर भी उससे मुक्त नहीं हो सकता है। उसी प्रकार कर्म के बंधनों की बात है। उनके भी प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग ये भेद हैं उनको जानता हुआ भी बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता है। यदि रागादि को छोड़कर विशुद्ध होता है तो बन्धन से छूट सकता है।

अनेन व्याख्यानेन ये प्रकृत्यादि बन्ध परिज्ञान मात्रेण सतुष्यस्ते प्रति बोध्यन्ते। कथं इति चेत्, बंध परिज्ञान मात्रेण स्वरूपोवलब्धि रूप वीतराग चारित्र रहितानां। स्वर्गादि सुख निमित्त भूतः पुण्य बन्धो भवति न च मोक्ष इति। एतेन व्याख्यानेन कर्मबन्ध प्रपञ्च रचना विषये चिन्तामात्र परिज्ञानेन सन्तुष्टा निराक्रियन्ते।

इस कथन से आचार्य देव ने जो प्रकृति स्थिति आदि रूप कर्म बंध के

परिज्ञान मात्र से संतुष्ट हुये बैठे हैं। (हमको कर्म बंध का ज्ञान तो है अतः हमें कुछ नहीं करना है क्योंकि ज्ञानमात्र से मोक्ष होता है ऐसा बताया है) उनको समझाया है कि हे भाई! स्वरूप की उपलब्धि रूप वीतराग चारित्र से रहित जीवों के बंध के परिज्ञान मात्र से स्वर्गादिक के सुख का निमित्तभूत पुण्यबंध ही होता है मोक्ष नहीं होता। इस कथन से उन लोगों का निराकरण किया है, जो कर्मबन्ध प्रपञ्च की रचना बन्धोदयादिरूप के विषय में चिंता कर लेने रूप ज्ञान मात्र से संतुष्ट हुए बैठे हैं। उपरोक्त आचार्य के वचन से प्रत्यक्ष एवं अनुभव से सिद्ध होता है कि लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने का साक्षात् एवं समर्थ कारण उसको प्राप्त करने रूप क्रिया है। जब तक तदनुकूल क्रिया नहीं होती है तब तक उसका विश्वास एवं ज्ञान किसी प्रकार का विशेष लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सक्रिय भाग नहीं लेता है। इसीलिए विश्वास एवं ज्ञान—लक्ष्य प्राप्त करने के लिए परम्परा से कारण बनते हैं। इसीलिए कहा है—“ज्ञानं भार क्रिया विना” क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है। सम्यक् चारित्र रूप पुरुषार्थ से ही समयसार रूप शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है। इसीलिए कुन्दकुन्द स्वामी (वट्टकेर स्वामी) मूलाचार में चारित्र अधिकार को समयसाराधिकार नाम से अभिहित करते हैं। मूलाचार के टीकाकार आचार्य श्री वसुनन्दी सिन्धान्त चक्रवर्ती भी चारित्र को ही समयसार बताते हैं। वे इस अधिकार की प्रथम गाथा की उत्थानिका में बताते हैं—

यह समयसार परमतत्त्व है, बारह अंग और चौदह पूर्वों का सार है—
मूल—गुण उत्तरगुणों का दर्शन—ज्ञान चारित्र का, शुद्धि विधान का और भिक्षा शुद्धि का सारभूत है।

समयो नाम सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं तपांसि तेषाऽच्च सारश्चारित्रं।

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं और तप का नाम समय है और इनका सारं चारित्र है।

कुन्दकुन्द स्वामी सूत्र पाहुड़ में बताते हैं कि जब तक तद्भव मोक्षगामी तीर्थङ्कर भी व्यवहार चारित्र सहित निश्चय चारित्र का प्रतिपालन नहीं करते हैं, वे भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

णवि सिञ्चइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होई तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खं मग्गो सेसा उम्मग्या सब्बे॥२३॥

परम वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान के शासन के अनुसार तीर्थकर भी जब तक बाह्य परिग्रह रूप वस्त्र को स्वीकार करते हैं तब तक वे सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। निर्गन्धता ही मोक्षमार्ग है अन्य सर्व कृतित उन्मार्ग हैं।

धुवसिद्धि तित्थयरो चउणाणं जुदोवि करेई तवयरणं

णाऊगं धुवं कुञ्जा तवयरणं णाणं जुतो वि॥६०॥

॥ मोक्षप्राभृत ॥

जिनकी सिद्धि (मुक्ति) तद्भव में निश्चित है एवं जो मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय ज्ञान समन्वित है एवं चरम शरीरी तीर्थकर भी स्वयं को चरम शरीरी तथा निश्चय मोक्षगामी जानते हुए भी ज्ञान से युक्त होकर सिद्धि प्राप्ति के लिए तपश्चरण करते हैं।

तीर्थेश्वरा जगञ्जोट्टा, यद्यपि मोक्षगमिना।

तथापि पालितं तैश्च, चारित्रं मुक्ति हेतवे॥

विश्व में सर्वश्रेष्ठ तीर्थकर यद्यपि तद्भव मोक्षगामी हैं तथापि मुक्ति के लिए चारित्र का परिपालन करते हैं।

णिच्छेत् पाणिपत्तं उवङ्गट्टं परमजिणवरिदेहिं।

एक्को वि मोक्खं मग्गो सेसा य उम्मग्या सब्बे॥१०॥

(सूत्रपा.)

अचेलकत्व एवं पाणिपात्र में भोजन करना परम जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित है। यह अंतरंग बहिरंग निर्गन्धता रूप चारित्र ही, मोक्षमार्ग है, अवशेष मार्ग उन्मार्ग हैं। इसी प्रकार मोक्षमार्ग में सम्यक् चारित्र भी महान् भूमिका को स्वीकार करते हुए कुन्दकुन्द स्वामी प्रवचनसार के अन्तिम अध्याय चरणानुयोग को प्रारम्भ करते हुए कहते हैं—

“पडिवज्ञादु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खं परिमोक्खं”॥२०॥

यदि सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त होकर शाश्वतिक सुख प्राप्त करने की इच्छा है तो श्रमण धर्म को अर्थात् चारित्र को अंगीकार करो, पालन करो।

तथा वैराग्यमपि समयस्य सारो यतः—

इसी प्रकार से वैराग्य भी समय का सार है, क्योंकि—

धीरो वैरग्यपरो थोवं हि य सिक्खिदूणं सिज्जदि हु।
य य सिज्जदि वैरग्यविहीणो पठिदूण सब्बसत्याइ ॥896॥

(मूलाचार)

धीर वैराग्य में तत्पर मुनि निश्चित रूप से थोड़ी भी शिक्षा पाकर सिद्ध हो जाते हैं किन्तु वैराग्य से हीन मुनि सर्व शास्त्रों को पढ़कर भी सिद्ध नहीं हो पाते हैं।

धैर्य से सहित सर्व उपसर्गों को सहन करने में समर्थ रागादि से रहित शरीर संस्कार और भोगों से उदासमना एवं विषयों से विरक्त मुनि अल्प भी सामायिक आदि स्वरूप के प्रतिपादन शास्त्रों को पढ़कर, उसकी अच्छी तरह अवधारणा करके कर्मों का क्षय कर देते हैं किन्तु वैराग्य से रहित मुनि सभी शास्त्रों को ग्यारह अंग पर्यन्त शास्त्रों को पढ़कर भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिए वैराग्यपूर्वक चारित्र का आचरण करना ही प्रधान है।

पुनरपि मुख्यरूपेन चारित्रस्य प्राधान्यं न श्रुतस्य यतः।

पुनरपि यहाँ बताते हैं कि मुख्य रूप से चरित्र ही प्रधान है, न कि श्रुतज्ञान क्योंकि—

थोवद्यि सिक्खिदे जिणइ बहुसुदं जो चरित्तसंपुण्णो।

जो पुण चरित्तहीणो किं तस्य सुदेण बहुएण ॥899॥

जो चारित्र से परिपूर्ण है वह थोड़ा शिक्षित होने पर भी बहुत श्रुतधारी को जीत लेता है किन्तु जो चारित्र से रहित है उसके बहुत से श्रुत से भी क्या प्रयोजन? जो यथोक्त चारित्र से सम्पन्न मुनिराज हैं, वे थोड़ा भी शिक्षित होकर अर्थात् पंचनमस्कार, मन्त्र मात्र का भी ज्ञान रखने पर और उस मन्त्र का समरण करने से ही दशपुर्वधारी मुनि को नीचे कर देते हैं। किन्तु जो चारित्र से हीन है उन्हें अधिक श्रुत से भी क्या लाभ? अर्थात् उन्हें मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती है। जिस हेतु ये अल्पमात्र भी श्रुत से सम्पन्न होकर बहुश्रुतधारी जीव को जीत लेते हैं उसी हेतु यहाँ ज्ञान, दर्शन और तप से भी चारित्र ही प्रधान है। क्योंकि हेयोपादेय विवेक के बिना और श्रद्धान के बिना सम्यक्चारित्र होता ही नहीं है। इसलिए ‘‘सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं।’’ इस सूत्र के साथ विरोध नहीं आता है।

जिस कारण से सम्यक् चारित्र से सुगति होती है वही कहते हैं—

सबं पि हु सुदणाणं सुट्टु सुगुणिदं पि सुट्टु पठिदं पि।

समणं भद्रचरितं ण हु सको सुगगइं णेदुं ॥907॥

अच्छी तरह पढ़ा हुआ भी और अच्छी तरह गुना हुआ भी सारा श्रुतज्ञान निश्चित रूप से भ्रष्ट चारित्र श्रमण को सुगति प्राप्त कराने में समर्थ नहीं है।

सभी श्रुतज्ञान अच्छी तरह काल आदि की शुद्धिरूप शोभन विधान से पढ़ा हुआ और परिणाम की शुद्धि से गुना-परिवर्तित किया हुआ तथा अच्छी तरह परम गति को प्राप्त कराने में समर्थ नहीं है इसलिये चारित्र की प्रधानता है।

जो अणुमेत्रु वि राउ मणि जाम ण मिलइ एत्यु।

सो णवि मुच्चई ताम जिय जाणंतु वि परमत्यु ॥8॥

(परमात्मा)

जो जीव थोड़ा भी राग मन में से जब तक इस संसार से नहीं छोड़ देता है, तब तक यह जीव निज शुद्धात्म तत्त्व को शब्द से केवल जानता हुआ भी नहीं मुक्त होता।

जो वीतराग सदा आनन्द रूप शुद्धात्म भाव से रहित पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा रखता है, मन में थोड़ा-सा भी राग रखता है, वह आगम ज्ञान से आत्मा को शब्द मात्र जानता हुआ भी वीतराग चारित्र की भावना के बिना मोक्ष को नहीं पाता।

सम्यक् चारित्र का स्वरूप

चारित्रं भवति यतः समस्त सावद्य-योग परिहरणात्।

सकल-कषाय-विमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत् ॥39॥

समस्त पाप क्रियाओं के त्याग से चारित्र होता है। वह चारित्र आत्म रूप होता है। वह चारित्र समस्त कषायों से रहित होता है। समस्त अनन्तानुबंधी आदि चतुष्क या सोलह प्रकार के कषाय या पच्चीस प्रकार के कषाय से रहित चारित्र होने से वह चारित्र निर्मल है, पवित्र है। वह चारित्र राग-द्वेष से रहित होने के कारण उदासीन है। सम्यक् भाव रूप है। अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह से रहित होने से चारित्र परिग्रह से अनाश्रित तथा आत्मा से आश्रित है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने प्रवचनसार (सत्यसाम्यसुखामृतम्) में चारित्र की परिभाषा में उपर्युक्त विषय को प्रकारान्तर से निम्न प्रकार बताया हैं—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्रि णिदिद्वो।

मोहक्खोह-विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥

Verily this realisation is the Dharma, which in turn is painted out as equanimity and equanimity is the state of the self in which infatigatory perturbation is absent.

(चारित्तं) चारित्र (खलु) प्रगटपने (धम्मो) धर्म हैं (जो धम्मो) जो यह धर्म है (सो समोत्ति) सो ही शम या साम्यभाव है, ऐसा (णिदिद्वो) कहा गया है (अप्पणो) आत्मा का (मोहक्खोहविहीणो) मोह व क्षोभ से रहित (परिणामो) भाव है (हि) वही (निश्चय करके (समो) समता भाव है।

प्रयोजन यह है कि शुद्ध चैतन्य के स्वरूप में आचरण करना चारित्र है। यदि चारित्र मिथ्यात्व रागद्वेषादि द्वारा संसरण रूप जो भाव संसार उसमें पड़ते हुए प्राणी का उद्धार करके विकार रहित शुद्ध चैतन्य भाव में धारण करने वाला है, इससे यह चारित्र ही धर्म है। यही धर्म अपनी आत्मा की भावना से उत्पन्न जो सुखरूपी अमृत उस रूप शीतल जल के द्वारा काम, क्रोध आदि अग्नि से उत्पन्न संसार के दुःखों की दाह को उपशम करने वाला है, इससे यही सम, शांत भाव या साम्यभाव है। मोह और क्षोभ के ध्वंस करने के कारण से वही शांत भाव मोह क्षोभ रहित शुद्ध आत्मा का परिणाम कहा जाता है। शुद्ध आत्मा के श्रद्धान रूप सम्पर्दशन को नाश करने वाला जो दर्शन मोहनीय कर्म है उसे मोह कहते हैं तथा निर्विकार निश्चल चित्त के वर्तनरूप चारित्र को जो नाश करने वाला है, वह चारित्र मोहनीय कर्म या क्षोभ कहलाता है।

इस गाथा में चारित्र को निश्चय से धर्म कहा गया है। धर्म की विभिन्न परिभाषाओं में से यह एक परिभाषा है। यह परिभाषा विशेषतः जीव के लिए प्रयुक्त की गई है। धर्म की विभिन्न परिभाषायें स्वामी कार्तिकेय ने निम्न प्रकार से की है। यथा—

धम्मो वत्यु सहावो खमादि भावो य दस विहो धम्मो।

रयणत्तयं य धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो॥

वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। दस प्रकार के क्षमा आदि भावों को धर्म कहते हैं। रलत्रय को धर्म कहते हैं, और जीवों की रक्षा करने को धर्म कहते हैं।

‘धम्मो वत्यु सहावो’ यह परिभाषा सार्वभौम परिभाषा है क्योंकि इसमें समस्त चेतन, अचेतन, मूर्त, अमूर्त, जंगम—स्थावर द्रव्यों के धर्म सहित है परन्तु यहाँ जीव का मुख्य प्रकरण होने से चारित्र को निश्चय से धर्म कहा गया है क्योंकि रलत्रय रूप परम साम्यचारित्र जीव में ही पाया जाता है। कुन्दकुन्द देव ने अन्यत्र कहा है कि ‘दंसण मूलो धम्मो’ अर्थात् धर्म का मूल सम्पर्दशन है। पर यहाँ कहा है कि धर्म का स्वरूप चारित्र है। इसका रहस्य यह है कि मोक्षमार्ग का शुभारंभ सम्पर्दशन से होता है परन्तु केवल सम्पर्दशन से ही मोक्ष नहीं मिलता है। इसी प्रकार सम्पर्दज्ञान भी धर्म की एक महत्वपूर्ण इकाई है तो भी मात्र सम्पर्दज्ञान से ही मोक्ष नहीं मिलता है। सम्पर्दशन की पूर्णता क्षयिक सम्पर्दशन की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती है तथापि वहाँ मोक्ष नहीं है। वैसे ही सम्पर्दज्ञान की पूर्णता 1 3 वें गुणस्थान में हो जाती है तथापि वहाँ मोक्ष नहीं है। भले चतुर्थ गुणस्थान में दर्शन मोक्ष है एवं 1 3 वें गुणस्थान में भाव मोक्ष है। जहाँ सम्पर्दशन और सम्पर्दज्ञान है वहाँ सम्पर्दचारित्र भजनीय है परन्तु जहाँ सम्पर्दचारित्र है वहाँ सम्पर्दशन और सम्पर्दज्ञान अवश्य है। जैसे किसी के पास 1 या 2 रूपये हैं उसके पास 3 रूपये हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते, परन्तु जिसके पास 3 रूपये हैं उसके पास 1 और 2 रूपये अवश्य होंगे ही। वैसे चतुर्थ गुणस्थान में सम्पर्दशन और सम्पर्दज्ञान है परन्तु चरणानुयोग के अनुसार देश चारित्र या सकल चारित्र नहीं है परन्तु सम्पर्दचारित्र के धारी अवश्य सम्पर्ददृष्टि और सम्पर्दज्ञानी होंगे ही। 1 3 वें गुणस्थान में सम्पर्दशन व सम्पर्दज्ञान की पूर्णता होने पर भी वहाँ परम यथाख्यात चारित्र की पूर्णता नहीं है। अतएव 1 3 वें गुणस्थान में मोक्ष नहीं है। जब 1 4 वें गुणस्थान के अन्त में सम्पूर्ण योगों के अभाव होने से परम यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है तब तत्क्षण ही मोक्ष हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि चारित्र ही निश्चय से जीव का धर्म है, क्योंकि चारित्र जीव का स्वरूप है। इसी भाव को आचार्य योगीन्दुदेव ने परमात्मप्रकाश में निम्न प्रकार से प्रगट किया है—

दंसणु णाणु चरितु तसु जो सम भाउ करेई।

इयरहैं एकु वि अत्थि णवि जिणवरु एवं भणेइ॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र उसी के निश्चय से होते हैं जो यति समभाव करता है, दूसरे स्वभाव रहित जीव के तीन रत्नों में से एक भी नहीं है। इस प्रकार जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

राय-दोश वे परिहरिवि जे सम जीव णियंति।

ते सम-भावि परिद्विया लहु णिवाणु लहंति॥

जो राग और द्वेष को दूर करके सब जीवों को समान जानते हैं, वे साधु समभाव में विराजमान शीघ्र ही मोक्ष को पाते हैं।

राय दोस वे परिहरिवि जो सम भाउ मुणेइ।

सो सामझउ जणि फुहु केवलि एवं भणेइ॥

राग और द्वेष इन दोनों को छोड़कर जो समभाव होता है, उसे निश्चय से सामयिक समझो ऐसा जिन भगवान् ने कहा है।

बहिरव्यंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।

णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं॥

संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए ज्ञानी जीव के जो बाह्य और अन्तरंग क्रियाओं का निरोध है, श्री जिनेन्द्र का कहा हुआ वह उत्कृष्ट सम्यक्चारित्र है।

देश चारित्र और सकल चारित्र

हिंसातोऽनृत वचनात् स्तेयादब्रह्मतः परिग्रहतः।

कात्तर्नैकदेश-विरते : चारित्र जायते द्विविधम् ॥४०॥

पूर्ण रूप से तथा एक देश से पापों से विरति रूप चारित्र दो प्रकार का है। समस्त पापों से विरक्त होना पूर्णव्रत है जो कि मुनियों का होता है। आंशिक रूप से पापों का विरक्त होना एक देश व्रत है जो कि श्रावकों के लिये है। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचारी परिग्रह से पूर्ण विरक्त रूप मुनि चारित्र है तथा आंशिक विरति रूप श्रावक चारित्र है।

व्यवहार मुनि चारित्र का स्वरूप

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्री य जाण चारित्तं।

वदसमिदिगुत्तिरुवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

जो अशुभ (बुरे) कार्य से दूर होना और शुभ कार्य में प्रवृत्त होना अर्थात् लगना है उसको चारित्र जानना चाहिये। श्री जिनेन्द्र देव ने व्यवहारनय से उस चारित्र को 5 व्रत, 5 समिति और 3 गुप्तिस्वरूप कहा है।

इस मोक्षमार्ग प्ररूपक अधिकार में मोक्षमार्ग के अभिन्न, अंगस्वरूप सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान प्ररूपण के बाद क्रम प्राप्त मोक्षमार्गः के अभिन्न अंग स्वरूप सम्यग्चारित्र का वर्णन आचार्य श्री ने यहाँ से प्रारंभ किया है। व्यवहार सम्यग्चारित्र एवं निश्चय सम्यग्चारित्र रूप से चारित्र दो प्रकार का हैं। उसमें से इस गाथा में व्यवहार चारित्र का वर्णन किया गया है क्योंकि व्यवहार-चारित्र पूर्वक ही निश्चय चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान के वर्णन के बाद सम्यग्चारित्र का वर्णन करने का कारण यह है कि सम्यक् दर्शन होने पर ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्र सम्यक्चारित्र होता है।

सामान्यत : अशुभ प्रवृत्तियों से निवृत्ति होना व्यवहार चारित्र हैं। इसके विशेष भेद 5 व्रत, 5 समिति, 3 गुप्ति आदि हैं। वर्तमान कुछ एकांत आध्यात्मिक मिथ्यावादी लोग भोग की तीव्र लालसा से लिप्त होकर कहते हैं कि शुभोपयोग, शुभोपयोग क्रिया, व्यवहार चारित्र सब हेय है मोक्ष के लिए अयोग्य हैं, पुण्य बंध होने के कारण त्यजनीय हैं। परन्तु दिग्म्बर जैन प्राचीनाचार्य कहते हैं कि अशुभोपयोग, पंच-अविरति, भोग-तृष्णा, संग्रह वृत्ति सब पाप है। दुख स्वरूप है संसार के कारण हैं। यथा—

हिंसादिव्यिहामुत्रापायावद्यर्थनम् ।

(स्वतंत्रता के सूत्र)

हिंसादिक पांच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक उपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है।

दुःखमेव वा । १०

अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिये। दुख के कारण होने से हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य एवं परिग्रह दुःख स्वरूप हैं।

इसके विपरीत दिग्म्बर आचार्य बताते हैं कि पापों का त्याग व्रतों का पालन, अनासक्ति भाव, भोगों का त्याग व्यवहार-चारित्र है जो कि पाप की निर्जरा के लिए कारण है, पुण्य सम्पादन के लिए उपाय है तथा परम्परा से मोक्ष के कारण भूत हैं।

जब सम्यक्दृष्टि के चारित्र मोहनीय कर्म अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का विशेष क्षयोपशम होता है तब वह जीव देशविरत पंचम गुणस्थानवर्ती बन जाता है।

समन्तभद्रस्वामी ने श्रावकाचार संहिता स्वरूप रलकरण श्रावकचार में कहा भी है—

**मोहतिमिरापहरणे दर्शनालाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिर्वृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥२२॥**

मोहरूपी अन्धकार के दूर होने पर सम्यक्दर्शन की प्राप्ति से जिसे सम्यज्ञान प्राप्त हुआ है, ऐसा भव्य जीव रागद्वेष की निवृत्ति के लिए चारित्र को प्राप्त होता है।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह रूपी पापों को त्याग करना चारित्र हैं। परन्तु जिसकी प्रत्याख्यान कषाय चतुष्क एवं संज्वलन कषाय चतुष्क का उदय रहता है तब यह जीव सकल चारित्र को धारण नहीं कर पाता है, परन्तु श्रावक योग्य पंचमगुणस्थानवर्ती देशचारित्र को धारण करता है। जिसका केवल संज्वलन चतुष्क का उदय है वह सकल चारित्र को धारण कर लेता है। इस अपेक्षा चारित्र (ब्रत), दो भेद हो जाते हैं। 1. देश या अणुव्रत 2. पूर्ण या महाव्रत। अमृतचन्द्र सूरि ने कहा भी है—

**हिंसातोऽनृतक्तनात् स्तेयावादब्रह्मतः परिग्रहतः।
कात्स्न्यैकदेशविरतेश्चारित्रं जायते द्विविधं ॥**

हिंसा से, असत्य वचन से, चोरी से, कुशील से परिग्रह से समस्त विरत और एक देश विरत से चारित्र दो प्रकार का होता है।

**निःतः कात्स्न्यनिवृत्तो भवति यतिः समयसार भूतोयम्।
. यात्वेकंदेशविरति निःखत्स्याममुपासको भवति ॥४१॥**

सर्वथा त्याग रूप चारित्र में लवलीन रहने वाले ये मुनि महाराज आत्मा के सारभूत शुद्धोपयोग रूप आत्मा स्वरूप में आचरण करने वाले होते हैं, यह जो एकदेश रूप त्याग है उसमें लवलीन रहने वाला श्रावक होता है।

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम्।

अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् ॥४॥

वह चारित्र सकल चारित्र और विकल-चारित्र के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से सम्पूर्ण चारित्र समस्त परिग्रहों से रहित मुनियों के और एकदेश चारित्र परिग्रह युक्त गृहस्थों के होता है।

देशव्रती—(श्रावक चारित्र)

जो तसवाहाउ विरदो अविरदओ तह य थावरवहादो।

एककसमयम्हि जीवो, विरदाविरदो जिणेवकमई ॥३१॥

गो०सा०पृ० 24

जो जीव जिनेन्द्र देव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ त्रस की हिंसा से विरत और उस ही समय में स्थावर की हिंसा से अविरत होता है उस जीव को विरताविरत कहते हैं।

अब उस पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक के ग्यारह भेदों को कहते हैं। वे इस प्रकार हैं— पहले सम्यादर्शन को धारण करे मध्य, (मदिरा), मांस और शहद (मधु) इन तीनों के और उदुम्बर आदि पांच फलों के त्याग रूप जो आठ मूलगुण हैं उन सहित हुआ जो जीव युद्ध आदि में प्रवृत्त होने पर भी शिकार आदि से प्रयोजन के बिना जीवघात नहीं करता है, उसको पहला दार्शनिक श्रावक कहते हैं। वही प्रथम दार्शनिक श्रावक जब त्रसजीव की हिंसा से सर्वथा रहित होकर पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों से सहित होता है तब दूसरा प्रतिक ब्रती इस नाम का धारक होता है। वही जब त्रिकाल सामायिक में प्रवृत्त होता है तब तीसरी प्रतिमा का धारी होता है। पोषध उपवास में प्रवृत्त होता है चौथी प्रतिमा का धारी होता है। सचित्त का त्याग से, पाँचवी प्रतिमा का धारक होता है। दिन में ब्रह्मचर्य को धारण करने से छठवीं प्रतिमा वाला कहलाता है। सर्वथा ब्रह्मचर्य को धारण से सप्तम प्रतिमा का धारी होता है। आरंभ आदि सम्पूर्ण व्यापारों से रहित होता है तब अष्टम प्रतिमा धारी कहा जाता है। वस्त्र के

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

आच्छादन को छोड़कर अन्य सब परिग्रहों से रहित होता है तब नवमीं प्रतिमा का धारक होता है। गृहों सम्बन्धी व्यापार आदि सम्पूर्ण सावध हिंसा सहित कार्यों में जब सम्मति (सलाह) देने से रहित होता है तब दशमीं प्रतिमा का धारी कहलाता है। अपने निमित्त किये हुये आहार का त्याग करने वाला ग्यारहवीं प्रतिमा का श्रावक कहा जाता है। इन प्रतिमा भेद से ग्यारह प्रकार के श्रावकों के बीच में जो पहली छः प्रतिमायें हैं उनमें रहने वाले तारतम्य (हीनाधिकता) से जघन्य श्रावक हैं, उनके आगे सातवीं, आठवीं और नवमीं इन तीन प्रतिमा के धारक मध्यम श्रावक हैं, इनके पश्चात् दसवीं और ग्यारहवीं इन दोनों प्रतिमाओं के धारक उत्तम श्रातक हैं।

इस प्रकार संक्षेप से देशचारित्र के द्रष्टव्यिकाश आदि ग्यारह भेद जानने चाहिये।

महाव्रती – (मुनि-चारित्र)

संजलणणोक्सायणुदयादो संज्मो हवे जम्हा।

मलज्ञणणपमादो विय तम्हा हु पमत्तविरदो सो॥३२॥

गो.सा.२४

सकल संयम रोकने वाली प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होने से पूर्ण संयम तो हो चुका है, किन्तु उस संयम के साथ-साथ संज्ञ्वलन और नो कषाय का उदय रहने से संयम में मल को उत्पन्न करने वाला प्रमाद भी होता है। अतएव इस गुणस्थान को प्रमत्त विरत कहते हैं।

विगतितदर्शन मोहेः समजसज्जानविदितत्वार्थेः ।

नित्यमपि निष्ठकम्यैः सम्यक् चरित्रमालव्यम्॥

नष्ट हो चुका है दर्शन मोहनीय कर्म जिनका, सम्याज्ञान के द्वारा जाने हैं जीव-अजीव आदिक तत्त्व जिन्होंने, जो सदा अडोल अथवा अचल रहने वाले हैं ऐसे पुरुषों-जीवों द्वारा सम्यक्चारित्र धारण किया जाना चाहिये।

प्रत्याख्यानावरण नामक तीसरे कषाय का क्षयोपशम होने पर जिसका विषयों और कषायों में गाढ़ा, दुःश्रुति (बुरा शास्त्र श्रवण) दुष्टचित्त और दुष्ट गोष्ठी (बुरी संगति) इनसे सहित, उग्र तथा उन्मार्ग (बुरे मार्ग) में तत्पर ऐसा उपयोग है वह जीव अशुभ में स्थित है। उक्त गाथा में कहे हुए लक्षण के धारक

अनेकान्त के प्रकाश में माक्षमार्ग

अशुभोपयोग से रहितपना और उक्त अशुभोपयोग से विलक्षण (उल्टा) जो शुभोपयोग है उसमें प्रवृत्त होना जो हैं उसको हे शिष्य! तुम चारित्र जानो। और वह चारित्र मूलाचार, भगवती आराधना आदि चरणानुयोग के शास्त्रों में कहे हुए प्रकार से पांच महाब्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति रूप हैं तो भी अपहृत संयम नामक शुभोपयोग लक्षण का धारक सराग-चारित्र नामक चारित्र होता है।

उसमें जो बाह्य विषयों में पांचों इन्द्रियों के विषय वगैरह का त्याग है वह तो उपचरित है और जो अन्तरंग में राग आदि का त्याग है वह अशुद्ध निश्चयनय से चरित्र है। इस प्रकार नयों का विभाग जानना चाहिये। ऐसे निश्चय चारित्र को साधन वाला जो व्यवहार चारित्र है उसका व्याख्यान किया गया।

हिंसा की परिभाषा

(व्युत्थानावस्थायां, रागादीनां वश प्रवृत्तानाम् ।

प्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा ॥४६॥

राग आदि परिणाम से वशीभूत जीव प्रमाद अवस्था में रहते हुए दूसरे जीव मरे या नहीं मरें अवश्य हिंसक होता है। आचार्य श्री ने इस प्रकरण में कहा कि राग आदि परिणाम से वशीभूत जीवों के तथा प्रमाद से सहित जीवों के आगे-आगे हिंसा दौड़ती रहती है। इसका रहस्य यह है कि वह अवश्यमेव हिंसक होता है अर्थात् त्रस-स्थावर जीवों के प्राणों का हनन करने वाले या नहीं करने वाले भी प्रमादी जीव अवश्य ही हिंसक होते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने भी प्रवचनसार (सत्यसाम्यसुखामृतम्) में कहा भी है:-

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।

पयदस्स णत्यि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥२१७॥

(जीवो मरदु व जियदु) जीव मरे या जीता रहे (अयदाचारस्स) जो यत्न पूर्वक आचरण से रहित है उसके (णिच्छिदा हिंसा) निश्चय हिंसा है (समिदस्स) समितियों में (पयदस्स) जो प्रयत्नवान् है उसके (हिंसामेत्तेण) द्रव्य प्राणों की हिंसा मात्र से (बंधोणत्थि) बध नहीं होता है।

बाह्य में दूसरे जीव का मरण हो या मरण न हो जब कोई निर्विकार स्वसंवेद रूप प्रयत्न से रहित है तब उसके निश्चय शुद्धचैतन्य प्राण का घात होने

87

से निश्चय हिंसा होती है। जो कोई भली प्रकार अपने, शुद्धात्मस्वभाव में लीन है, अर्थात् निश्चयसमिति को पाल रहा है तथा व्यवहार में ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निष्क्रेपण, प्रतिष्ठापना इन पाँच समितियों में सावधान है, अंतरंग बहिरंग प्रयत्नवान है, प्रमादी नहीं है उसको बंध नहीं होता है। यहाँ यह भाव है कि अपने आत्मस्वभावरूप निश्चयप्राण का विनाश करने वाली रागादि परिणति निश्चय हिंसा कही जाती है। रागादिक उत्पन्न करने के लिये बाहरी निमित्त रूप जो परजीव का घात है सो व्यवहार हिंसा है, ऐसे दो प्रकार हिंसा जाननी चाहिए, किन्तु विशेष यह है बाहरी हिंसा हो, या न हो जब आत्मस्वभाव रूप निश्चय प्राण का घात होगा तब निश्चय हिंसा ही मुख्य है।

उच्चलियम्हि पाए इरियासमिदस्स णिगमत्थाए।

आबाधेज्ज कुलिंगं अरिज्जं तं जोगमासेज्जा (217)

ण हि तस्स तण्णिमिते बंधो सुहमो य देसिदोसमये।

मुच्छापरिग्गहोच्चिय अज्ञाप्यमाणदो दिट्टे ॥

(इरिया समिदस्स) ईर्या समिति से चलने वाले मुनि के (णिगमत्थाए) किसी स्थान से जाते हुए (उच्चलियम्हि पाए) अपने पग को उठाते हुए (जोगमासेज्जा) उस पग के संघट्न के निमित्त से (कुलिंग) कोई छोटा जन्तु (आबाधेज्ज) बाधा को पावे (मरिज्ज) या मर जावे (तस्स) उस साधु के (तण्णिमितो सुहमो य बंधो) इस क्रिया के निमित्त से जरासा भी कर्म का बंध (समये) आगम में (णहि देसिदो) नहीं कहा गया है। जैसे (मुच्छापरिग्गहोच्चिय) मूर्छा को परिग्रह कहते हैं सो (अज्ञाप्यमाणदो दिट्टो) अंतरंग भाव को मूर्छा देखी गई है।

आचार्य श्री ने इस गाथा में हिंसा एवं अहिंसा की यथार्थ सूक्ष्म व्यापक आगमोक्त परिभाषा दी है। धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य निश्चय से स्वयं के ऊपर अवलम्बित है दूसरों पर अवलम्बित नहीं है। भले निमित्त और भी कुछ हो सकता है। स्वशुद्ध आत्मात्वरूप से विचलित होना च्युत होना ही हिंसा है। आत्मत्वरूप से च्युत होना ही अयत्नाचार है, प्रमाद है। इसलिए कहा गया है कि ‘प्रमत्तयोगात्- प्राणव्यपरोपणं हिंसा’ प्रमाद के योग से भावप्राण एवं द्रव्य प्राणों को क्षति पहुँचाना नष्ट करना हिंसा है। प्रमाद के योग से रहित वस्तुतः हिंसा होती नहीं भले द्रव्य हिंसा हो, क्योंकि आत्मव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष भाव के

ऊपर ही अवलम्बित है, भले इसके लिए बाह्य निमित्त और कुछ भी हो। कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है—

अज्ञवसिदेण बंधो सत्ते मारेहि मा व मारे हि।

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ (274)

निश्चयनय का कहना है कि जीवों को मारो या न मारो, किन्तु जीवों के मारने रूप भाव से कर्मों का बंध तो होता है। यही बंधतत्व का संक्षेपसार है। निश्चयनय से प्रत्येक जीव अजर, अमर, शाश्वतिक है। इसलिये कोई किसी को नहीं मार सकता है। अशुद्ध निश्चयनय से स्वयं की हिंसा स्वयं ही कर सकता है क्योंकि अशुद्ध निश्चय नय से जो रागद्वेष, मोह परिणाम होता है उनसे स्वस्वरूप की हिंसा हो जाती है। इसलिये अशुद्ध निश्चयनय से स्वयं की हिंसा स्वयं करता है और इस भाव से दूसरों के द्रव्यप्राण एवं भावप्राण को क्षति पहुँचाता है अतः उसे हिंसा कहते हैं। इसलिये वस्तुतः स्वअध्यवसाय, स्वप्रमाद या स्वअयत्नाचार ही हिंसा है।

उपर्युक्त समस्त सिद्धातों से यह सिद्ध होता है कि भाव निर्मलता/पवित्रता ही वस्तुतः अहिंसा है और भावों की मलिनता, अपवित्रता ही हिंसा है। जिनकी भावों में निर्मलता होगी अर्थात् भाव अहिंसा होगी वे द्रव्य हिंसा भी नहीं कर सकते हैं। कथंचित् उनसे द्रव्य हिंसा हो जाती है परन्तु जो भाव हिंसक हैं उनसे द्रव्य हिंसा हो या नहीं हो वे निश्चय ही हिंसक हैं। जिस प्रकार आत्मा को पवित्र करने के लिए जो उपवास करते हैं उस उपवास के कारण उदर व शरीरस्थ अनेक जीव मरते हैं। छद्मस्थ के शरीर में अनंत बादर निगोदिया जीव व अनेक त्रस जीव भी रहते हैं परन्तु वही जीव जब केवली बन जाता है तो उसके शरीरस्थ अनंत जीव ध्यानरूपी अग्नि से कुछ निकल भी जाते हैं, कुछ मर भी सकते हैं तथापि आत्मकल्याण के लिए उपवास करने वालों को एवं शुक्ल, ध्यान करने वालों को जीव हिंसा जनित दोष नहीं लगता है न पाप बन्ध ही होता है परन्तु जो स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्य रहता है उसके कान में रहने वाला तन्दुल मत्य नरक जाता है। भले वह जीवन में एक जीव को भी नहीं मारता है, न मांस खाता है, केवल महामत्य के कान के मैल को खाता है। इससे सिद्ध होता है कि भावों की पवित्रता ही यथार्थ से अहिंसा है परन्तु, वर्तमान में देखने में आता

है कि कुछ व्यक्ति, जो अहिंसा का उपदेश करते हैं दूसरों को अहिंसा का पाठ पढ़ाते हैं वे ही अधिक कुटिल, मायाचारी, दूसरों को ढगने वाले, धृत, अच्छी चीज में नकली मिलावट करने वाले, अधिक व्याज लेकर दूसरों का शोषण करने वाले, घी में डालडा तथा चर्बी मिलाने वाले, शराब एवं चर्म का व्यापार करने वाले, मुर्गीपालन करने वाले, हिंसात्मक सौदर्य प्रसाधन सामग्री का व्यापार व प्रयोग करने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन में एक भी बार द्रव्य हिंसा न करे तथा एक मांस का टुकड़ा ना खाये तो भी हिंसक हैं, पापी हैं क्योंकि जब भावों में अहिंसा होगी तो ऐसी विचित्र हिंसा इनसे हो ही नहीं सकती है। इसका मतलब यह नहीं द्रव्य हिंसा करें या द्रव्य हिंसा की छूट है। परन्तु भाव अहिंसा के लिए भावों की निर्मलता के लिए द्रव्य हिंसा भी सर्वथा वर्जनीय है क्योंकि जो जान बूझकर द्रव्य हिंसा करेगा वह अवश्य ही भाव हिंसक ही होगा। इसलिये भावों की निर्मलता के लिए भाव हिंसा एवं द्रव्य हिंसा दोनों त्यजनीय है। करुणा के अवतार महात्माबुद्ध ने अप्रमाद को अमृत कहा है एवं प्रमाद को मृत्यु कहा। उन्हीं का यह कथन वर्थार्थ है। क्योंकि अप्रमाद से हिंसा नहीं होती है और यह अहिंसा ही अमृत (अ+मृत= न मरना, अमर, विकार न होना, क्षति न होना) है तथा प्रमाद ही मृत्यु (विनाश, घात, क्षति, दुःख, मरण) है। अतएव अप्रमादी अमृतपद (मोक्ष, शाश्वतिक, निर्वाण) को प्राप्त करता है और प्रमादी मृत्युपद (मरण, दुःख, संसार) को प्राप्त करता है। धम्पपद में उन्हीं का अमर संदेश निम्न प्रकार से लिपिबद्ध है।

अप्पमादो अमदपदं पमादो मच्छुनो पदं।

अप्पमता न मीयन्ति ये पमता यथामता॥

प्रमाद न करना अमृत पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का साधक। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे तुल्य ही हैं।

उद्गुने न अप्पमादेन सज्जमेन दमेन च।

दीपं कथिराथ मेधावी यं ओधो नाभिकीरति॥५॥

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम (इन्द्रिय दमन) द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनावें, जिसे बाढ़ नहीं डूबा सके।

पमादमनुयुज्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना।

अप्पमादज्ज मेधावी धनं सेठं व रक्षति ॥६॥

मूर्ख, अनाङी लोग प्रमाद में लगते हैं, बुद्धिमान श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की रक्षा करता है।

मा पमादमनुयुज्जेय मा कामरतिसन्ध्यवं।

अप्पमत्तो हि ज्ञायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं॥७॥

मत प्रमाद में फँसे, मत कामरति में लिप्त हो। प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते हुये महान् सुख को प्राप्त होता है।

पमादं अप्पमादेन यदानुदति पण्डितो।

पञ्जापासादमारुह असोको सोकिनिं पञ्जं॥८॥

जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है तब वह शोक रहित हो, शोकाकुल प्रजा को, प्रजारूपी प्रासाद पर चढ़कर जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही वीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

अप्पमत्तो पमत्ते सु सुत्ते सु बहु जागरो।

अबलस्सं व सीघस्सो हित्वायाति सुमेधसो॥९॥

प्रमादी लोगों में अप्रमादी तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान उसी प्रकार आगे निकल जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।

असत्यरूपी हिंसा

यदिदं प्रमाद-योगादसदभिधानं विधीयते किमपि।

तदनृतमपि विज्ञेयं तद्देदाः सन्ति चत्वारः ॥११॥

प्रमाद के योग से जो कुछ असत् कथन कहा जाता है वह सब झूठ है। उस असत्य के चार भेद हैं। यथा—सद्भाव को छुपाना और असद्भाव का कथन करना जैसा कि आत्मा है परन्तु परलोक नहीं है, असत्य का उद्भावना करना यथा—श्याम तन्दुल के समान या अंगुष्ठ पर्व मात्र या सर्वगत अथवा निष्क्रिय आत्मा है। जो विद्यमान अर्थ है उसका भी कथन यदि कथाय तथा प्राणी पीड़ा सहित है तो वह कथन विपरीत है, असत्य है क्योंकि जो हिंसाकारक है वह सत्य

होते हुए भी असत्य हैं। सत् प्रतिषेध तथा भूत-निन्हव का एक ही अर्थ है उसमें अर्थ भेदनीय है। अभूत उद्भावन तथा असद् उद्भावन दोनों में नाम भेद होते हुये भी अर्थ भेद नहीं है। क्योंकि असत् उद्भावन का अर्थ है जो नहीं है उसको प्रकट करना।

पहले ही आचार्य श्री ने प्रतिपादन किया था कि प्रमाद रूपी हिंसा में असत्य आदि पाप गर्भित हैं केवल प्राथमिक शिष्य को समझाने के लिए असत्य आदि का कथन विस्तारित किया जाता है। इस श्लोक में आचार्य श्री असत्य को प्रमाद में अन्तर्गत करके उसे हिंसा रूप से सिद्ध कर रहे हैं। केवल, झूठ, असत्य का कथन करना मिथ्यारूपी हिंसा नहीं है परन्तु कषाय/प्रमाद से युक्त होकर सत्य भी कहना असत्य है, हिंसा है। सामान्यतः सुना जाता है और कुछ छोटी-छोटी पुस्तकों में भी पढ़ाया जाता है कि जो देखा हुआ, जो सुना हुआ, उसको उसी प्रकार नहीं बोलना असत्य है परन्तु यह परिभाषा पूर्ण तथा यथार्थ नहीं है। जैसे धीवर ने एक व्यक्ति से पूछा कि मछलियाँ कहाँ हैं? उस व्यक्ति ने देखा था कि तालाब में मछलियाँ हैं। उसने बोल दिया कि उस निश्चित तालाब में मछलियाँ हैं। उस धीवर ने जाकर तालाब में जाल बिछाकर मछलियों को पकड़ लिया। तो क्या उस व्यक्ति ने जो सत्य बोला वह सत्य है? नहीं, वह सत्य नहीं है क्योंकि उससे अनेक जीवों की हिंसा हुई। इसी प्रकार काना को काना, अंधे को अंधा, लंगड़े को लंगड़ा आदि बोलकर चिढ़ाना, अपमानित करना सत्य नहीं है क्योंकि उससे भाव हिंसा होती है। सत्य की संक्षिप्त सार गर्भित परिभाषा निम्न प्रकार की है:-

हित-मित्र-प्रिय वचः जीव हित साधकम्।

स सत्यं आगम वचः स्याद्वाद सहितम्॥

जो वचन हितकर है, सीमित है, प्रियकर है, जीव के लिए हितकारी है, आगम अनुकूल है और स्याद्वाद सहित है वही वचन सत्य हैं। जो सत्य एवं मधुर वचन होते हुए भी यदि कुमार्ग में प्रवृत्त कराता है तो वह वस्तुतः सत्य वचन नहीं है अपितु असत्य वचन है। इसलिए वचन हितकर होना चाहिए। यथार्थ वचन भी अनर्गल प्रवृत्ति से, वाचाल स्वरूप से एवं अयोग्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि से बोलने पर वे वचन सत्य नहीं हैं, क्योंकि वे वचन मित विशेषण से रहित हैं। सत्य वचन भी यदि प्रिय नहीं है, कर्ण मधुर नहीं है, मृदु नहीं है और उस वचन से अप्रियता,

द्रेष, कटुता पैदा होती है तो वचन भी सत्य वचन नहीं है। सर्वज्ञ प्रणीत आगम से विरोध वचन भी सत्य वचन नहीं है। इसलिए सत्यवादी को आगमानुकूल बोलना चाहिए। आगम के अनुकूल बोलते हुए भी हठग्राहिता से स्वार्थ या पंथसिद्धि के लिए अनेकान्त, स्याद्वाद को छोड़कर अपेक्षा को दुर्लक्ष्य करके जो बोलता है वह भी बड़ा असत्य है।

सत्यं बूयात्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

प्रियं चानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः ॥

सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए, सत्य होते हुए भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिए। प्रिय असत्य वचन नहीं बोलना चाहिए यह सनातन धर्म है।

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे सांच है ताके हृदये आप॥

सत्य के बराबर तप नहीं है, झूठ के बराबर पाप नहीं है, जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में भगवान है।

झूठी गवाही देना, कोर्ट में अन्याय पक्ष को लेकर वकालत करना, दूसरों को ठगने के लिए जाल-साजी वचन कहना आदि असत्य वचन हैं। जो असत्य बोलता है उसको वर्तमान भव में जिव्हा छेदन दंड मिलता है, पर भव में जिव्हा में एवं मुख में विभिन्न रोग होते हैं तथा उसकां कोई विश्वास नहीं करता है और ऐसे असत्य भाषी पर भव में मृक बनता है।

छोटी रूपी हिंसा

अवितीर्णस्य ग्रहणं, परिग्रहस्य प्रमत्त-योगाद्यत्।

तत्रत्येयं स्तेयं, सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ॥102॥

यहाँ से आचार्य श्री द्वितीय असत्य विरति व्रत का व्याख्यान करके तृतीय स्तेय/चौर्य विरति लक्षण व्रत का निरूपण कर रहे हैं। जो प्रमत्त योग से नहीं दिया हुआ परिग्रह का ग्रहण करता है वह चौर्य है क्योंकि वह प्रत्यय-विश्वास-प्राण वध के लिए कारण होने से बिना दिया हुआ परिग्रह-धन-धान्य का ग्रहण-अपहरण करना चोरी है, द्रव्य प्राण, भाव प्राण की हिंसा के लिए हेतु होने से।

क्रोध-मान-माया-लोभ-कामुक आदि भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण करना या आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्य को स्वीकार करना चोरी है। यदि

अन्तरंग में विकार भाव नहीं है तो पर द्रव्यों का ग्रहण होने पर भी चोरी का दोष नहीं लगेगा। जैसे शून्यगृह—छोड़े हुए घर में मुनि रहते हैं हाथ धोने के लिए प्रतिबंध रहित मिट्ठी प्रयोग में लाते हैं, प्रासुक झरने का पानी प्रयोग करते हैं तो भी उनको चोरी का दोष नहीं लगता है क्योंकि उनके हृदय में चोरी करने रूपी भाव नहीं है। यदि अतरंग में कथाय भाव होने पर भी दूसरों की धनसम्पत्ति प्रतिकूल परिस्थिति के कारण चोरी नहीं कर पाया तो भी वह दोष का भागी ही है। जैसे एक चोर को रात्रि में सेंध खोदते समय कोतवाल ने पकड़ लिया, वह चोर चोरी नहीं कर पाया तो भी न्यायाधीश उसको दोषी साबित करके दण्ड देंगे। केवल डाका डालकर, सेंध बनाकर चोरी करना ही चोरी नहीं है परन्तु अधिक मुनाफा लेना, कम तौलकर देना, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, न्यायपूर्ण सेलटेक्स, इनकम टेक्स नहीं देना, श्रमिकों (मजदूरों) को उपर्युक्त वेतन नहीं देना, रिश्वत लेना, राष्ट्र के न्याय नीति के विरुद्ध व्यवसाय करना, चावल में कंकड मिलाकर बेचना, धी में डालडा मिलाना, डालडा में चर्बी मिलाना आदि चोरी रूप गर्हित पाप हैं। धनसम्पत्ति मनुष्यों का ग्याहरवाँ प्राण है, जो दूसरों की धनसम्पत्ति हड्डप करता है, वह उसका प्राण हर लेता है। जो अन्याय से धन उपार्जन करता है, उसका धन अधिक दिन तक नहीं रहता है।

अन्यायेन उपार्जितं धनं दशवर्षाणि तिष्ठति।

प्राप्ते तु एकादशवर्षे समूलं च विनश्यति ॥

अन्याय से उपार्जित धन 10 वर्ष तक रहता है। ग्याहरहवें वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाता है।

हूनसांग भारत के विषय में लिखते हैं कि भारत एक समृद्धशाली देश होते हुए भी कोई घर में ताला नहीं लगाते थे। इससे सिद्ध होता है कि भारत में पहले विशेष, चोरी नहीं होती थी। अभी भी कुछ वैदेशिक देश में चोरी कम होती है परन्तु भारतीय लोग स्वयं को श्रेष्ठ एवं धार्मिक देश की प्रजा मानते हुए भी विचित्र चोरी करते हैं। व्यापारी क्षेत्र में काला बाजारी, मिश्रण (मिलावट) आदि चोरी के कार्य के साथ-साथ शैक्षणिक, शासकीय, न्यायालय आदि में भी चोरी की भरमार है। विद्यार्थियों को शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ाते हैं और विद्यार्थी ठीक से नहीं पढ़ते हैं यह कर्तव्य चोरी है। परीक्षा में नकल करना भी चोरी है, रिश्वत

लेकर शिक्षा विभागीय अधिकारी एवं शिक्षक आदि के द्वारा विद्यार्थियों को प्रश्न-पत्र पहले से ही देना, अधिक नम्बर दे देना, अनुत्तीर्ण विद्यार्थी की उत्तीर्ण कर देना आदि चोरी है। न्यायालय में रिश्वत लेकर सही को झूठ करना एवं झूठ को सत्य करना बहुत बड़ी चोरी है, जिससे निर्दोष मारा जाता है, दोष बढ़ता है, नैतिक पतन होता है एवं सत्य का हनन होता है। प्रायः करके न्यायालय अभी अन्यायालय हैं, न्यायाधीश अन्यायाधीश है। सत्य के नाम पर असत्य का ही साम्राज्य चलता है। इसी प्रकार शासकीय नेता वर्ग, ओफिसर आदि प्रायः रिश्वत लेकर ही काम करते हैं परन्तु अपना पवित्र कर्तव्य मानकर काम करने वाले बहुत कम हैं। पूँजीपति व्यापारी वर्ग भी मार्केट में वस्तुओं का शार्टेज उत्पन्न करके मनमाना मूल्य बढ़ाकर साधारण प्रजा का शोषण करते हैं जो कि रक्त शोषण, गला काटने से कुछ कम नहीं है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में हाहाकार मच जाता है एवं कुछ साधारण मनुष्य भी चोरी आदि कुकृत्य करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। अतः देश, राष्ट्र की शान्ति के लिये उपरोक्त चौर्य कर्म का त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

चोरी का फल : चोरी करने वालों को चोर कहकर पुकारते हैं, उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं, उसको अपने समीप में, घर में, ग्राम में, नगरादि में नहीं रखना चाहते हैं, उसका कोई विश्वास नहीं करते हैं, उसको राजदण्ड मिलता है, देश से भी निकाल देते हैं। परभव में निर्धन भिखारी बनता है, कठोर परिश्रम करने पर भी पेट भरना दुर्लभ हो जाता है। दूसरे भव में उसकी धन सम्पत्ति भी अग्नि से, पानी से, भूकम्प से, चोरी आदि से नष्ट हो जाती है।

परिग्रह की सत्ता-असत्ता में हिंसा-अहिंसा

उभय-परिग्रह-वर्जनमाचार्योः सूचयत्यहिं सेति।

द्विविध-परिग्रह वहनं, हिंसेति जिन-प्रवचनज्ञाः ॥118॥

जिन प्रवचन को जानने वाले पंचाचार परायण आचार्य दोनों प्रकार के परिग्रह ग्रहण करना हिंसा कहा है तथा दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग अहिंसा कहा है।

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेद्विष्ट।

बंधोधुवमुवधीदो इदि समणा छहिया सवं ॥219॥

(कायचेद्विमि) शरीर से हलन-चलन आदि क्रिया के होते हुए (जीव मयदे) किसी जन्तु के मर जाने पर (हि) निश्चय से (बंधोहवदि) कर्मबंध होता है (वा ण हवदि) अथवा नहीं होता है (अध) परन्तु (उवधीदो) परिग्रह के निमित्त से (बंधोधुवं) बंध निश्चय से होता ही है (इदि) इसलिए (समणा) साधुओंने (सव्व) सर्व परिग्रह को (छट्टिया) छोड़ दिया।

साधुओं ने व महाश्रमण सर्वज्ञों ने पहले दीक्षाकाल में शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव मयी अपनी आत्मा को ही परिग्रह मानकर शेष सर्व बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़ दिया ऐसा जानकर के अन्य साधुओं को भी अपने परमात्म स्वभाव को ही अपना परिग्रह स्वीकार करके शेष सर्व ही परिग्रह को मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदना से त्याग देना चाहिये। यहाँ यह कहा गया है कि शुद्ध चैतन्यरूप निश्चय प्राण का घात जब राग-द्वेष आदि परिणाम स्वरूप निश्चय हिंसा से किया जाता है तब नियम से बन्ध होता है, पर जीव के घात हो जाने पर बंध हो वा न भी हो, नियम नहीं है, किन्तु परद्रव्य में ममतारूप मूर्च्छा परिग्रह से तो नियम से बंध होता ही है।

इस गाथा में आचार्य कुन्द-कुन्द भगवन्त ने एक महान् आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया है। शान्त, स्वाभाविक, शुद्ध स्वभाव का हनन जिन राग, द्वेष, मोह, ममत्व, इच्छादि भावों से होता है उसे ही निश्चय से हिंसा कहते हैं अर्थात् वैभाविक भाव ही हिंसा है एवं स्वभाव ही अहिंसा है। वैभाविक भावों से रहित जीव की काय की क्रिया से यदि कोई जीव मर जाता है तथापि उसे हिंसा का दोष नहीं लगेगा। इसलिये द्रव्य हिंसक, भाव अहिंसक हो सकता है, परन्तु जो बाह्य परिग्रह धारी है वह अवश्य अन्तरंग परिग्रह धारी है। क्योंकि बिना अन्तरंग के मोह, ममत्व, तृष्णा, लोभ के बाह्य परिग्रह को नहीं स्वीकार सकता है। और मोह, ममत्वादि ही यथार्थ से हिंसा है। इसलिये परिग्रह धारी अवश्य हिंसक है और उसे कर्मबन्ध होता है। परन्तु द्रव्य-हिंसक कर्थंचित् अहिंसक होने से उसे कर्मबन्ध नहीं होता है। इस दृष्टि से हिंसक से भी महाहिंसक परिग्रहधारी है। इसलिये अमृतचन्द्र सूरि ने इस गाथा की टीका में कहा है कि परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता है, ऐसा जो परिग्रह का सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभाविपना है, उससे प्रसिद्ध होने वाले निश्चय अशुद्धोपयोग के सद्भाव के कारण परिग्रह से तो बन्ध निश्चित है। इसलिये अभी तक जितने

भगवान बने पहले वे परिग्रह को त्यागकर के ही अहिंसक बने। समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है-

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमं।
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यथाश्रमविधौ॥
ततस्तिसद्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं।
भवानेवात्याक्षीन्तं च विकृतवेषोपधिरतः ॥ (4)

पृ. 132

हे भगवन! प्राणियों की अहिंसा जगत में परम ब्रह्म रूप से प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है परन्तु वह अहिंसा उस आश्रय विधि में नहीं है जिसमें थोड़ा भी आरम्भ होता है। इसलिये उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए परम दयालु होकर आपने ही बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ा है और यथाजातलिंग के विरोधी वेष तथा परिग्रह से आसक्त नहीं हुए हैं। अन्तरंग एवं बहिरंग परिग्रह पर स्वरूप है। जहाँ पर संयोग है, वहाँ बन्ध है जहाँ बन्ध है वहाँ दुःख ही दुःख है। इसलिए मुमुक्षु परिग्रह को दुष्टग्रह, ग्राह (मगरमच्छ) से भी अधिक दुःखदायी मानकर त्याग कर देते हैं। पूज्यपाद ने कहा भी है-

परः परस्ततो दुःखमात्मेवात्मा ततः सुखं।

अत एव महात्मानस्तन्मित्तं कृतोद्यमाः ॥45॥

देहादि पर पदार्थ तो पर ही है उन्हें अपना मानने से दुःख होता है किन्तु आत्मा, आत्मा ही है—आत्मा पदार्थ अपना है। वह अपना ही रहेगा वह कदाचित् भी देहादिरूप नहीं हो सकता— उसे अपनाने से सुख प्राप्त होता है। इसीलिये तीर्थकरादि महापुरुषों ने आत्मा के लिये ही उद्योग किया है— विविध घोर तपश्चरण के अनुष्ठान द्वारा आत्मतत्व की प्राप्ति की है।

अविद्वान् पुद्गलं द्रव्यंयोऽभिनन्दति तस्यतत्।

न जातु जंतोः सामीयं चतुर्गतिषु मुञ्चति॥46॥

अज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य को अपना मानता है अतएव पुद्गल द्रव्य चारों गतियों में आत्मा का सम्बन्ध नहीं छोड़ता है। वह बराबर साथ बना रहता है।

परिग्रह बहुत बड़ी हिंसा एवं बहुत बड़ा पाप होने पर भी आज स्वर्यं को

जैन धर्मावलम्बी मानने वाले आनुसंगिक द्रव्य हिंसा को तो बहुत बड़ा पाप मानते हैं, परन्तु परिग्रह को हिंसा या पाप नहीं मानते हैं। वह परिग्रह को तो पृण्य मानते हैं, शान, स्वाभिमान की वस्तु मानते हैं। जो अन्याय पूर्ण प्रणाली से यथा-मिलावट, शोषण, ठगबाजी, धोखाबाजी आदि से भी धन कमाकर धन्नासेठ बन जाते हैं, उसे लोग पृण्यशाली धार्मिक मानते हैं और उसके अनैतिक पूर्ण, अन्याय पूर्ण, अधार्मिक व्यवहार को भी भय. के कारण सहन करते हैं परन्तु प्रतिवाद नहीं करते, निराकरण नहीं करते हैं। कुछ व्यक्ति दानादि करके अपना नाम कमाने के लिए, अहंकार की पुष्टि के लिए अन्याय से भी धन कमाते हैं और इस अन्यायपूर्ण धन से यद् किंचित् दान देकर स्वयं को धार्मिक एवं दानी मानते हैं। इतना ही नहीं, इस दान के पीछे सेलटेक्स चोरी, इन्कमटेक्स चोरी, समाज के ऊपर प्रभाव डालना, अपना वर्चस्व कायम करना आदि कुभावना भी निहित रहती है। हमारे आचार्यों ने यहाँ तक कहा है कि दान देने के लिए भी धन कमाना मानो स्नान करके शरीर को स्वच्छ करने के बहाने से शरीर को मल से लिप्त करना है। यथा-

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तं संचिनोत्तियः।
स्व शरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पतिः॥१६॥

॥ इष्टोपदेश ॥

जो निर्धनी पुरुष, पुण्य प्राप्ति होगी ऐसा विचार कर दान करने के लिये धन कमाता या जोड़ता है, वह स्नान कर लूँगा ऐसे ख्याल से अपने शरीर को कीचड़ से लपेटता है। जो निर्धनी ऐसा ख्याल करें कि पात्रदान, देवपूजा आदि करने से नवीन पृण्य की प्राप्ति और पूर्वोपार्जित पाप की हानि होगी, इसलिए पात्र दानादि करने के लिए धन कमाना चाहिए, नौकरी, खेती आदि करके धन कमाता है, समझना चाहिये कि वह स्नान कर डालूँगा ऐसा विचार कर अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है। खुलासा यह है कि जैसे, कोई आदमी अपने निर्मल अंग को स्नान कर लूँगा का ख्याल कर कीचड़ से लिप्त कर डाले तो वह बेवकूफ ही गिना जायेगा। उसी तरह पाप के द्वारा पहले धन कमा लिया जाय, पीछे पात्रदानादि के पृण्य से उसे नष्ट कर डालूँगा ऐसे ख्याल से धन के कमाने में लगे हुए व्यक्ति को भी बेवकूफ समझना चाहिए। संस्कृत टीका में यह भी लिखा

है कि चक्रवर्ती आदि की तरह जिसको बिना यत्न किये हुए धन की प्राप्ति हो जाय तो वह उस धन से कल्याण के लिए पात्रदान आदि करे तो करे। फिर किसी को भी धन का उपार्जन शुद्ध वृत्ति से हो भी नहीं सकता जैसा कि श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासान में कहा भी है—

“शुद्धैर्धनैविवर्धन्ते, सत्तामपि न संपदः।
नहि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णा कदाचिदपि सिन्धवः॥”

‘सत्पुरुषों की सम्पत्तियाँ, शुद्ध ही शुद्ध धन से बढ़ती हैं, यह बात नहीं है। देखो नदियाँ स्वच्छ जल से ही परिपूर्ण नहीं हुआ करती हैं वर्षा में गंदले पानी से भी भरी रहती हैं।

कोई प्रश्न कर सकता है कि फिर श्रावक को दानादि में भी खर्च नहीं करना चाहिए यह भाव निकलता है ? परन्तु रहस्य यह है कि परिग्रह पाप है और परिग्रहधारी हिस्सक है इसलिए समग्रता से सम्पूर्ण परिग्रह त्याग करना चाहिये। यदि सम्पूर्ण त्याग नहीं कर पाता है तो परिग्रह अणुव्रत को धारण करे। इस अणुव्रत में भी जो पाप संचय होता है इसके साथ साथ अन्य-अन्य गृहस्थ सम्बन्धी पाप को कम करने के लिए निर्लोभता से, त्याग को बढ़ाने के लिए न्याय से कमाये धन से यथाशक्ति ज्ञान, औषधि आहारादि दान दे। यदि परिग्रह धारी होकर भी दानादि नहीं करता है तो और भी महान् पापी है, लोभी है। दान से हिंसा स्वरूप लोभ का निरसन किया जाता है और जो दान नहीं देता है वह लोभ रूपी हिंसा को करता है।

स्वशुद्ध आत्मास्वरूप को छोड़कर समस्त बाह्य चेतन, अचेतन, मिश्र (चेतन-अचेतन) का ममत्व, आसक्ति, प्रेम, लोभ, इच्छा, आकांक्षा, राग का त्याग करना अपरिग्रह है। स्व अशुद्ध आत्मा में एक क्षेत्रावागाही में रहने वाले राग द्वेषादि भाव कर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म एवं औदारिक शरीरादि नो कर्म भी परिग्रह हैं। शरीर से भी ममत्व रखना परिग्रह है। इतना ही नहीं, स्वशुद्धता में लीनता को छोड़कर अन्य शुद्धात्मा का ध्यान करना भी पर समय है। 14 वें गुणस्थान के अंतिम समय में केवल पाप कर्म की ही बात क्या है ? पृण्य कर्मों के भी सम्पूर्ण क्षय से जीव पूर्ण मोक्षावस्था को प्राप्त करता है। जब तक एक भी पृण्य कर्म जीव के साथ बंधा रहता है तब तक जीव पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त नहीं कर पाता है।

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग इसलिए जैनधर्म में परिग्रह को भी पाप माना है। बाह्य परिग्रह के बिना भी परिग्रह की इच्छा, लालसा, आसक्ति, संग्रहवृत्ति को भी पाप माना है परन्तु कुछ जैन जो धन को ही धर्म मानने वाले हैं, स्वार्थसिद्धि को ही सर्वार्थसिद्धि (पूर्णसिद्धि, मोक्ष) मानने वाले हैं, वे परिग्रह रूपी पाप को भी पुण्य मानते हैं, जो परिग्रहधारी पाप हैं उसे भी पुण्यात्मा मानते हैं। परिग्रहरूपी पाप को कमाते हैं, संचय करते हैं, संवृद्धि करते हैं, सुरक्षा करते हैं पूजा करते हैं। अधिक से अधिक परिग्रह संग्राहक को बड़े से बड़े पापी को भी बड़े से बड़े पुण्यात्मा, धर्मात्मा, श्रावक, शिरोमणी, सम्यक्त्व चूडामणी, समाज रत्न मानते हैं किन्तु जैन धर्मानुसार अधिक से अधिक आरंभ, व्यापार, परिग्रहधारी बड़े से बड़े नरक जाते हैं। कम परिग्रहधारी को पापी मानना एवं बड़े परिग्रहधारी को धर्मात्मा मानना वैसा है जैसे कि एक बिन्दु मद्य पीने वाला तो नरक जाता है एवं बोतल बोतल मद्य पीने वाला स्वर्ग जाता है। परिग्रह रूपी पाप के लिए हिंसा, असत्य चोरी, बेर्इमानी, शोषण, कालाबाजारी, मिलावट, ईर्ष्या, छेष, लोभ, लालसा आदि पाप भी करते हैं। अधिक परिग्रहधारी पापी उस पाप का अहंकार, ममकार भी करते हैं।

विशेष ज्ञातव्य यह है कि पापानुबन्ध पुण्य कर्म के उदय से या पापक्रिया से जो परिग्रह संचय करता है उससे दान, पुण्यादि करने का भाव नहीं होता है परन्तु उससे भोग, विलास, व्यसनादि में खर्च करता है। क्योंकि “चोरी का माल मोरी में जाता है” यह नीति है। यदि इस परिग्रह (धन) को दानादि में लगायेगा तो धर्म के लिए नहीं परन्तु ख्याति, कीर्ति, प्रसिद्धि, अहंवृत्ति, नाम की वृद्धि रूपी पाप के लिये लगायेगा। परन्तु जो धर्मात्मा पुण्यानुबन्धी पुण्य कर्मादय से न्यायोचित प्रणाली से धन कमाता है, उससे उसकी दानादि करने की भावना होती है और वह दान, धर्म के लिए करता है न कि अहंभाव की संतुष्टि आदि के लिये। उसके पास धन होते हुए भी उसमें उसकी विशेष लालसा, तृष्णा नहीं होती है।

कुछ व्यक्ति उस समय, उस क्षेत्र, उस कार्य में दान देंगे जिससे अधिक से अधिक भीड़ हो। अधिक से अधिक अहंभाव को पोषण तत्त्व मिले और अधिक से अधिक लौकिक लाभ हो। ऐसे व्यक्ति आहारदान, ज्ञानदान में कम खर्च करेंगे परन्तु जब अधिक से अधिक भीड़ रहती हैं ऐसे सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक मेला, सभा, रैली, पंचकल्याण, पूजा, उत्सव, पर्व में बोली लेकर रूपये देंगे। कोई मंदिर में सफेद संगमरमर का एक 100 रूपये का पत्थर लगायेगा तो

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग उसमें परिवार के इतने नाम लिखवायेंगे कि जिससे पत्थर ही काला हो जायेगा और पत्थर के लागत मूल्य से कुछ कम वेशी खर्च नाम लिखने में ही लग जायेगा। यदि कोई ट्यूब लाईट दान में देता है तो उसके कांच में इतनी प्रशस्ति लिखायेगा जिससे प्रकाश ही मन्द पड़ जाता है। जहाँ विशेष करके ईट, पत्थर, इकड़े, किये जाते हैं ऐसे धर्मशाला, संस्थादि के लिए अनाप-सनाप खर्च करेंगे, क्योंकि इस शिला में अपना शिक्षालेख अपने ‘अहं’ को बहुत काल तक संतुष्ट करेगा परन्तु सत्साहित्य, सम्यंज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए दान नहीं करेंगे क्योंकि इस ज्ञानदान से अपनी अहंवृत्ति की पुष्टि अधिक नहीं होती है। जिस जैन धर्म के अनुसार नौकर, गृहपालित पशु-पक्षियों की व्यवस्था, देख-भाल, भोजन कराने के बाद गृह स्वामी भोजन करता है उसके कुछ अनुयायी माता-पिता की व्यवस्था सेवा तक भी समुचित रूप से नहीं करते हैं। नौकरों की भी समुचित व्यवस्था नहीं करते तथा योग्य वेतन तक नहीं देते हैं। जिस नौकर को सरकार या अन्य धर्मानुयायी के मालिक जितनी वेतन देते हैं उसके अनुपात से ये बहुत कम देते हैं।

मैथुन रूपी हिंसा

यद् वेद राग-योगात्, मैथुनमभिधीयते तदब्रह्मा।

अवतरित तत्र हिंसा, वधस्य सर्वत्र सद्भावात्॥

जो वेद राग के योग से मैथुन किया जाता है वह अब्रह्म है। उस अब्रह्मचर्य में सर्वत्र हिंसा का सद्भाव है। क्योंकि उस अब्रह्मचर्य में सर्वत्र प्राणवध का सद्भाव होता है। क्योंकि अहिंसादि गुण जिससे वृद्धि को प्राप्त होते हैं उसे ब्रह्म कहते हैं। नहीं ब्रह्म है वही अब्रह्म है अर्थात् कुशील। मैथुन में प्रवर्तन करने वाला जीव हिंसादि को करता है। स्थावर त्रस जीवों को मारता है। अतएव हिंसा के कारण होने से अब्रह्म त्याज्य है।

काम चेतना प्राणी मात्र में एक दुर्दमनीय विकार भाव है। काम प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षीण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिससे मनुष्य में उत्साह, धैर्य, ज्ञान, विज्ञान, विवेक, संयम आदि नष्ट हो जाते हैं। जीवन को उर्ध्मुखी बनाने के लिये, स्वास्थ्य संपादन करने के लिये, आजीवन युवक रहने के लिये, बौद्धिक शक्ति का विकास करने के लिये नई नई प्रखर प्रज्ञा प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि के समान है।

केवल शारीरिक मैथुन त्याग से ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता है, उसके साथ-साथ मन से कामवासना त्याग, वचन से कामकथा त्याग तथा कृत, कारित, अनुमोदना से मैथुन त्याग करने से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। जो वीर्य प्रायः 42 दिन में तैयार होता है, वही वीर्य एक बार के भोग से क्षय होता है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिए पुनः 42 दिन चाहिये। ‘‘बिन्दु पात हि मरणत्’’ अर्थात् वीर्य स्खलन ही मरण है।

अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम : – एक बार भोग के समय में संभोग किया से लब्ध्यपर्याप्तक नवलक्ष (लाख) जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सरसों से भरे पात्र में एक तप्त लोह खण्ड डालने से सब सरसों जल जाते हैं उसी प्रकार नवलक्ष लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय मनुष्य जातीय जीव भस्म हो जाते हैं। यह हुई द्रव्य जीव हिंसा। द्रव्य हिंसा के साथ में जो मैथुन-भोग भोगने का मानसिक मलिन विचार है वह भाव हिंसा है। इन सारे पापों का फल इस भव में नहीं तो अगले भव में निश्चित भोगना पड़ेगा। इस पाप से अब्रह्मचारी छूट नहीं सकता है।

ब्रह्मचर्य का फल :

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि “त्रिलोक्य पूज्य भवति ब्रह्म” तीन लोक से पूज्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से पालन करना सबके लिये संभव नहीं है, तथापि स्व स्त्री या स्व-पति से ही संतोष रखना उसमें भी संयमित रूप से केवल योग्य संतान की उत्पत्ति के लिये भोग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

स्त्री को कम से कम 18 वर्ष तक एवं पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहकर विद्या-अध्ययन करना चाहिये। उसके पश्चात् रज एवं वीर्य पक्व हो जाता है जिससे योग्य, बलिष्ठ, तेजस्वी, धर्मात्मा सन्तान उत्पन्न होती है। ऋतु स्नान में भोग करना सर्वथा त्यजनीय है। उससे ओज-वीर्य, आयु आदि घटती है। अनेक महारोग शरीर में प्रवेश करने लगते हैं। वह रोग वंश-परम्परा से आगे चलकर अपने परिवार सन्तान के ऊपर गलत प्रभाव डालता है। यदि सन्तान-परम्परा के ऊपर दया करुणा भाव है तो इन दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से चौथे दिन से 16 दिन तक भोग का समय है। उसमें भी अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या एवं पर्व आदि दिनों में भोग वर्जनीय है।

दिन में भोग करने से आयु क्षीण होने से दिन में भोग वर्जनीय है। ग्रीष्म ऋतु में भी विशेष भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से लेकर 16 दिनों में किया हुआ स्त्री संबंध ही गर्भ धारण करने का कारण हो सकता है। अतः सोलह दिन से आगे ऋतु स्नान तक स्त्री संबंध आयुर्वेद में वर्जनीय है। इस प्रकार संयमित जीवन यापन करने पर कम एवं योग्य संतान होगी जो कि सर्वगुण सम्पन्न तथा निरोगी होगी। वर्तमान में संयमित जीवन के अभाव में ही तेज हीन (शरीर कांति) वीर्य हीन, अवांछित अधिक सन्तान की उत्पत्ति होती है जिस से स्वयं माता-पिता एवं सरकार भी चिंतित हैं। उसका निरोध करने के लिये अनैतिक साधन के माध्यम से गर्भ निरोध सरकार कर रही है। इससे शील को ही तिलांजलि दे दी है। कोई किसी से भोग करने पर भी गर्भ नहीं रहने के कारण पता नहीं चलता है, जिससे अनैतिकता, कुशलता, पापाचार बढ़ रहा है। इसलिए सुखमय जीवन-यापन करने के लिए ब्रह्मचर्य अणुव्रत पालन करना सबके लिये परम कर्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य अणुव्रत भारत की एक प्राकृतिक, वैज्ञानिक जन्म निरोध प्राणाली हैं। इसको अपनाने से जन्म निरोध अर्थात् कुटुम्ब नियोजन प्रणाली तथा अर्थव्यय सब रुक जायेंगे।

जो पर स्त्री गमन करता है या जो स्व स्त्री से अधिक लम्पटता से भोग करता है वह पर भव में नपुंसक बनेगा। पुरुष बना तो लिंग में अनेक रोग उत्पन्न होंगे। परभव में तेजहीन, वीर्यहीन, दुर्बल शरीर मिलेगा। अभी भी अनेक लोग टी. बी. के रोग से ग्रस्त दिखते हैं और अनेक चर्म रोग ब्लड दूषित होने से रोगी दिखते हैं। ये प्रायः अधिक भोग करने से ही हुये हैं। अतः ऐसी दुःखदायी अवस्था से बचना हो तो ब्रह्मचर्य ही एकमात्र श्रेयस्कर है।

वेश्या को पण्य स्त्री भी कहते हैं। वे स्त्रियाँ पैसा लेकर, अपने शील को पर पुरुष को बेचती हैं। रूपयों के लोभ से वे रोगी, पापी, हीन, दीन व्यक्तियों के साथ भी भोग करती हैं, जिससे उनकी योनि में अनेक संक्रामक रोग होते हैं। उनके साथ जो भोग करता है उसके लिंग में रोग हो जाता है जिससे मरण काल के समान तीव्र वेदना होती है। वह पर स्त्री गामी पुरुष लज्जा के कारण किसी को उस रोग के बारे में नहीं बताता है, जिससे उसका औषध पानी होना भी कठिन हो जाता है। इस प्रकार वह पुरुष रूपया देकर रोगों को खरीदता है। उसे सब कोई घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वेश्या में आसक्त होकर अपनी सारी सम्पत्ति दे डालता

है। जिससे गरीबी के दिन गुजारता है। परिवार के लोगों को कष्ट में डालता है। तद्भव मोक्षमार्मी स्वाध्याय प्रेमी, ज्ञानी चारूदत्त जिसने विवाह के पश्चात् अपनी नवयुवती सुन्दरी स्त्री को देखा तक भी नहीं था वही चारूदत्त वसंतसेना नाम की वेश्या के कारण 12 वर्ष तक वेश्या के घर में रहा और 32 करोड़ स्वर्ण दीनारें खो डाली एवं अन्त में संडास गृह में उसे डलवा दिया गया। इस प्रकार धन, धर्म, यौवन, स्वास्थ्य, शील आदि को नाश करने वाला वैश्यागमन का त्याग करना चाहिये।

महान् दुःख की बात है कि कुछ प्रादेशिक सरकार के द्वारा, (महाराष्ट्र सरकार आदि) वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने के कारण वेश्याओं की संख्या बढ़ रही है। विवेकी सरकार तथा जनता को चाहिये कि इसका पूर्णरूप से विरोध करें जिससे देश में शील, न्याय, नीति कायम रहे। वेश्या के यहाँ आना-जाना उसका सहवास करना, वेश्याओं का नृत्य देखना उसका गाना सुनना, उससे लेन-देन करना आदि वेश्यागमन के ही अंग हैं।

वेश्यागमन का दुष्प्रणाम :

जो भौतिकवाद, विलास प्रिय अमेरिका आदि देश शील का मखौल उड़ाते थे, वे आज एड्स रोग के कारण शील को महत्व देने लगे हैं। नीतिकारों ने कहा है—

“आर्त नरा: धर्म परा भवन्ति” दुःखी जन धर्मपरायण होते हैं।

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।

जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥

यह एड्स रोग वेश्यागमन से होता है। इसका वर्णन नव भारत टाईम्स में 29 मई 1988 में आया हुआ विषय यहाँ उद्धृत कर रहे हैं— लेख का नाम “यौन क्रांति का अंत।” जान देने और दिल लुटाने के मुहावरे आज सज्जे बन गए हैं। मनचलों की दुनिया में खलबली मच गई है। रंगीन राते संगीन बनती जा रही हैं। लाल बत्ती वाले इलाकों में आशिक और माशुक बे—मौत मरे जा रहे हैं। तमाम वेश्याएँ विष कन्याओं में बदलती जा रही हैं। पर किया प्रेम की दुर्हाई देने वाले घर लौट रहे हैं। कौमार्य और ब्रह्मचर्य जैसी गई—गुजरी बातें फिर से श्रद्धा की पात्र हो गई हैं। जो पश्चिमी देश आधुनिकता के नाम पर उन्मुक्त यौन उच्छृंखला में आकंठ ढूबे हुये थे, वे आज अपने किए पर पछता रहे हैं तथा कथित यौन

क्रांति आखरी साँसे गिन रही है। यह अजीब जीव एक किस्म का वायरस यानी विषाणु है। जितना छोटा उतना खोटा है। यह वायरस इतना छोटा है कि इसका व्यास 100 से.गेनो मीटर या 0.1 माईक्रो मीटर मापा गया है। ऐसे सुक्ष्मातिसुक्ष्म जीव ने आज लगभग 133 देशों में एड्स का असाध्य रोग फैलाकर ऐसी दहशत पैदा की है कि उसके सामने परमाणु युद्ध का आतंक भी नहीं रह गया है। इस रोगाणु की शोध 1983 में पेरिस में डॉक्टर लुक मोटारनीर ने और 1984 में अमेरिका के डॉक्टर रोबर्ट ढौली ने किया था।

एड्स का वायरस आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा और आतंकवाद का मानो वामन अवतार है। एड्स का वायरस मानव देह के अन्दर खून में पलता है। पहले यह हमारे खून की प्रतिरक्षा प्रणाली के पहरेदार को दबोचता है, उसके बाद याहे फ्लू हो या निमोनिया किसी भी रोगाणु के खिलाफ रोगी के खून में एंटीबॉडी Resistance grow नहीं करता है। एक बार पूरे खून में एड्स के विषाणु फैल जाएँ तो चन्द महीनों में ही मौत रोगी को अपने पंजे में दबोच लेती है। अमेरिका में शताधिक ब्लू फिल्मों के बेताज बादशाह माने जाने वाले जोन हेल्मस का 14000 रमणियों का रिकार्ड है, जुलाई 1986 में एड्स के वायरस के चपेट में आये और मार्च 1988 में निमोनिया ने प्राण लिये। अल्सर, अतिसार, बुखार और वजन घटते जाने से एड्स के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। धीरे-धीरे ओज हीन होता हुआ एड्स रोगी सूखकर काँटा हो जाता है। एड्स का वायरस सबसे पहले दिमाग पर हमला बोलता है और रोगी इसका शिकार हो जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अकेले अफ्रीकी देशों में ही 20 लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों के देह में एड्स का वायरस पल रहा है। सारी दुनिया में 50 लाख से 1 करोड़ लोग इस घातक वायरस के शिकार से जीते-जागते मनमाने घूम रहे हैं। इनमें 15 लाख अकेले अमेरिका में हैं। युनिसेफ की ताजा रिपोर्ट के अनुसार अगले दशक में 50 लाख से 3 करोड़ तक बच्चे भी एड्स के शिकार हो जायेंगे। इस समय भी 6 हजार बच्चे जाम्बिया में और 14000 अमेरिका में एड्स पीड़ित हैं, इनको यह रोग माता-पिता से लगा है। स्तनपान से उतना खतरा नहीं पहुँचा है। केवल दो बच्चों को यह रोग एड्स ग्रस्त माँ के स्तनपान से पहुँचा है। रक्त शुक्राणु और खराब सुईयों के कारण भी एड्स फैलता है। तथा कथित यौन-क्रांति आखिरी साँसे गिन रही है। दुनिया भर के

दुरुचार के अहूं में सनसनी फैल गई है। जो काम संत महात्मा नहीं कर पाये वह 'एड्स' की बीमारी वाले एक निहायत क्षुद्र प्राणी ने कर दिखाया। इसलिए एक बार फिर पश्चिमी स्कूलों में नैतिकता की दुहाई दी जा रही है।

मैथुन में हिंसा :-

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन ने एक बार बताया था 'मेडिकल शोध से सिद्ध हुआ है कि 25 बृद्ध वीर्य में 60 मिलियन (6 करोड़) से 110 मिलियन तक सूक्ष्म जीव रहते हैं। उन्होंने स्वयं सूक्ष्मदर्शक यंत्र से वीर्य के जीवों को चलते-फिरते हुये देखा। जीवों का आकार (अनुमानतः) प्रायः मनुष्य जातीय सूक्ष्म लब्ध पर्याप्तक जीव के समान है। माता का रज एसिड (अम्ल) गुण युक्त होता है। पिता का वीर्य एल्केलाइन (क्षार) गुण युक्त होता है। संभोग में रज और वीर्य के संयोग होने पर एसिड व एल्केलाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रतिक्रिया होती है उससे उन जीवों का संहार हो जाता है। वे आगे बोले कि 'जब से मैंने मेरी आँखों से वीर्य में बिलबिलाते हुये जीवों को देखा तब से अन्तरंग में मुझे बहुत ग्लानि हुई और मैं ब्रह्मचर्य का अधिक से अधिक पालन करने लगा।'

यह आपने एक डॉक्टर के द्वारा कहा हुआ स्वयं का अनुभव पढ़ा। इस विषय को विशेष लिखने का कारण यह है कि अज्ञानता के कारण मनुष्य समाज को जो शारीरिक-मानसिक क्षति पहुँच रही है, इससे मनुष्य समाज की रक्षा हो, स्वयं की अज्ञानता का बोध हो। यदि कोई एक भी मनुष्य आंशिक रूप से भी ब्रह्मचर्य को आचरण में लाये तो मेरा लिखना सार्थक होगा।

मैंने पहले ही सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र से जाना था कि वीर्य में सूक्ष्म जीव होते हैं। जब डॉ. साहब ने बताया तब मैंने सोचा कि मैं भी परीक्षा करके देख लूँ कि जीव कैसे होते हैं और कितने रहते हैं। उसके 3 दिन के बाद ही सूक्ष्मदर्शक यंत्र लाकर मुझे दिखाया। यंत्र को पहिले 50 गुना करके देखा तब हमने सूक्ष्म जीवों की राशि देखी जो किल-बिल कर रही थी। उनका आकार उस समय सूक्ष्म पुष्पाराग (रेणु) के समान दिखाई दिया। पुनः 500 गुना करके देखा। उस समय उनका आकार अत्यन्त छोटे मेढ़क के पूँछ सहित प्युषा आकार का था। मैं बाल्यकाल के विद्यार्थी अवस्था से ही विद्या प्रेमी, सत्य उपासक, परीक्षा प्रधानी रहा। इसलिए बहुत समय तक विभिन्न प्रणाली से देखा एवं परीक्षण किया। परीक्षण करते-करते बोला 'जिस समय भौतिक-विज्ञान का नाम भी नहीं था,

उस समय तथा उससे भी करोड़ों, अरबों वर्ष पहले भगवान आदिनाथ, महावीर आध्यात्मिक महावैज्ञानिकों ने यह बात बिना इन्द्रियों और बिना यंत्र से आध्यात्मिक ज्योति से देखकर दुनिया के सामने रखी थी। इसको पहले कोई नहीं मानते थे। जैन शास्त्र जैसे - गोम्मटसार, जीवकाण्ड, ध्वला सिद्धान्त शास्त्र, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, मोक्ष शास्त्र की टीका, श्रावकाचारादि में इसका स्पष्ट वर्णन है।'

कुछ शास्त्रों में लिखे हुए विषय को वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये-

योनिस्तनं प्रदेशेषु हृदि कक्षान्तरेष्वपि।
अतिसूक्ष्माः मनुष्याश्च जायन्ते योषिताम्॥

(प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

अति सूक्ष्म मनुष्य जातीय जीव स्त्रियों की योनि, स्तन, हृदय, काँखादि स्थानों में होते हैं।

मेहुण सण्णारुढो मार्ह णवलक्ष्म सुहूम जीवाई।
इयं जिणवरेहि भणियं बज्ज्ब्यंतरं णिगंथ रुवेहि॥

(भावसंग्रह)

मैथुन संज्ञा से (काम चेतना से) उत्तेजित होकर जब मनुष्य भोग करता है, तब वह नौ लाख जीवों (900000) को मारता है, ऐसा अन्तरंग बहिरंग बन्धनों से रहित जिनेन्द्र देव ने कहा है। (कोई-कोई बताते हैं 9 लाख कोटि जीव मरते हैं। (900000000000 जीव)

नवलक्ष्म जीवोऽत्रैव प्रियन्ते मैथुनेन भो।
इत्येवं जिन नाथेन प्रोक्तं केवल लोचनात्॥

(प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

जिननाथ, चिज्योतिमय केवल आध्यात्मिक रूपी अन्तः चक्षु से देखकर बताते हैं कि मैथुन से 9 लाख जीव मरते हैं।

४२ समुच्छिम जीवा लद्धिअपज्जत्तगा चैव।

मनुष्य जातीय सूक्ष्म जीव लद्धि अपर्याप्तक नियम से होते हैं अर्थात् शरीरादि पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले मर जाते हैं।

हित्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्यत्।
बहवो जीवा यौनो हिं स्यन्ते मैथुने तद्बत्॥

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

जैसे तिल से पूर्ण नाली में गरम लौह छड़ डालने से तिल भुकर जल जाते हैं, इस प्रकार संभोग क्रिया में अनेक जीव जलकर मर जाते हैं।

अभी विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण रूपी अग्नि से महावीर की वाणी तप कर निखर उठी। इस प्रकार सत्य विज्ञान रूपी अग्नि जितनी जलेगी उतनी ही महावीर की वाणी अधिक से अधिक निखरेगी। असत्य रूपी कोयला जलकर भस्म हो जाता है, परन्तु सत्यरूपी सोना तपकर शुद्ध बनता है और चमकता है।

मैंने विचार किया इतने सूक्ष्म विषय को भी सन्मति-वर्धमान-महावीर ने परीक्षण करके और मैथुन से होने वाले जीव विध्वंस को जानकर विश्व को अमर संदेश दिया – ‘तिलोय पूज्य हवइ बंभ’ तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है। वीर डंके की चोट पर बोले अन्य हिंसादि पाप, बिना भाव से हो सकते हैं किन्तु अब्रह्म पाप बिना भाव से नहीं हो सकता है।

मैं स्वयं परीक्षा प्रधानी होने से इस परीक्षण से मेरी श्रद्धा धर्म में और भी अधिक दृढ़ हो गई।

इसको मैं विज्ञान का एक वरदान मानता हूँ। विज्ञान के प्रकाश में वर्तमान अज्ञान-अन्धकार, रूढ़िवाद, भेड़-चाल आदि रूपी तमस् नष्ट हो रहा है। मनुष्य अभी विवेक से परीक्षण करके, तर्क से घिसकर के असत्य को त्यागकर सत्य को ग्रहण कर रहा है। धर्मान्धता, हठग्राहिता, धर्म में आड़म्बरता, तोता-रटन्त, बलिदान, सतीदाह प्रथा, धर्म के नाम पर अन्याय, अत्याचार, दुराचार, शोषण, ठगबाजी आदि का जो लोप हो रहा है, उसका त्रेय कुछ अंश में आधुनिक-विज्ञान, शिक्षा, सम्यता को है। इसे मैं ही क्या समस्त प्रबुद्ध मानव स्वीकार करने से इंकार नहीं करेंगे। इस दिशा में मैं सभ्य मानव का हृदय से आह्वान करता हूँ।

हमको सत्य का साक्षात्कार करने के लिए असत्य को त्यागकर आगे बढ़ना है परन्तु एक ख्याल – जरूर रखना है कि धर्म से या पुरानी मान्यता से नफरत कर उसमें स्थित सत्य के अंश को त्याग नहीं करना है। नहीं तो “‘चौबे छब्बे होने के लिये गये, हो गये दुब्बे।’” कहा है –

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निसेवन्ते।
ध्रुवाणि तस्य नस्यन्ति अध्रुवाणि नष्टमेव च॥

(कौटिल्य)

जो ध्रुव (सत्य) को छोड़कर असत्य का सेवन करता है उसका सत्य नष्ट हो जाता है, असत्य तो नष्ट है ही।

निश्चय चारित्र का स्वरूप

बहिरव्यभंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्टं।

णणिस्सं जं जिषुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥46॥

That checking of external and internal actions by one who has knowledge, in order to destroy the causes of Samsara, is the excellent Samyak Charitrs (perfect conduct) mentioned by the jina.

ज्ञानी जीव के जो संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए बाह्य और अंतरंग क्रियाओं का निरोध है, वह श्री जिनेन्द्र से कहा हुआ उत्कृष्ट सम्यक्चारित्र है।

आचार्य श्री ने पूर्व में चारित्र के भेदरूप व्यवहार चारित्र का वर्णन किया था। अब क्रम प्राप्त व्यवहार चारित्र के साध्यभूत निश्चय चारित्र का वर्णन इस गाथा में कर रहे हैं। उपयोग तीन प्रकार के हैं – 1. अशुभोपयोग 2. शुभोपयोग 3. शुद्धोपयोग। अशुभोपयोग की क्रियाएँ एकान्ततः पाप बंध की तथा संसार की क्रिया होने के कारण त्यज्यनीय हैं। शुभोपयोग एवं शुभोपयोग की क्रियाएँ यथा शुभ क्रियायें – श्रावक एवं मुनि का व्यवहार चारित्र, यह अशुभोपयोग एवं पाप को हटाता है, पुण्य को सम्पादन करता है एवं परम्परा से मोक्ष के लिए कारण बनता है। परन्तु शुद्धोपयोग अर्थात् निश्चय चारित्र समस्त अंतरंग-बहिरंग क्रियाओं से, शुभ-अशुभ से रहित होने के कारण साक्षात् मोक्ष के लिए कारण है। परन्तु यह निश्चय चारित्र भी अशुभोपयोग त्याग रूप व्यवहार चारित्र के माध्यम से साध्य है इसीलिये पूर्वचार्य ने अशुभ/पाप/अव्रत को त्याग कर शुभ/पुण्य/ब्रत को स्वीकार करते हुये शुद्ध/मोक्ष को प्राप्त करने की प्रेरणा दी है – यथा

त्यक्त्वैव बहिरात्मानपन्तरात्म व्यवस्थितः।

भावयेत्परमात्मानं सर्वसंकल्पविर्जितम् ॥27॥

समाधितन्त्र

इस प्रकार विचार करके मिथ्या अनुद्धान से शरीर को ही आत्मा समझने वाले बहिरात्मापन को छोड़कर अन्तरात्मा में व्यवस्थित अच्छी तरह स्थिर होता हुआ समस्त संकल्प विकल्पों से रहित परमात्मा की भावना करें।

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैः मोक्षस्त्योर्ध्ययः।

अब्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्॥८३॥

अब्रतों यानी हिंसा आदि पाँच पापों द्वारा दुःखदायक नरक निगोद आदि दुर्गति में ले जाने वाले अशुभ कर्म का बंध होता है। अहिंसा, सत्य आदि व्रतों के द्वारा सुख शान्ति देने वाले ऐसे वेदनीय, मनुष्य, देव गति से जन्म देने वाले पुण्य यानी—शुभ कर्म का बन्ध होता है और मुक्ति शुभ और अशुभ यानी पुण्य और पाप कर्मों के नाश होने से प्राप्त होती है। इस कारण मोक्ष का इच्छुक भ्रव्य प्राणी पहले त्याग किये हुए हिंसादिक पापों की तरह आत्मध्यान में निमग्न होते हुए समस्त बाह्यव्रताचरण को भी छोड़ देवे।

अब्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।

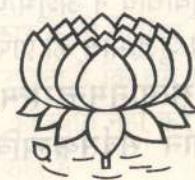
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्तं परमं पदमात्मनः॥८४॥

इस लिए सम्यग्दृष्टि जीव पांचों पापों का त्याग करके अहिंसा आदि अणुव्रतों तथा महाव्रतों में चर्या करे यानी— अणुव्रत महाव्रतों का आचरण करे और आत्मा के परम् उत्कृष्ट पद को पाकर उन व्रतों को भी छोड़ देवें।

अब्रति व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।

परात्म ज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्॥८५॥

अब्रति माने व्रत रहित मनुष्य प्रतिज्ञा के साथ व्रतों का आचरण करे, अणुव्रती त्रावक तथा महाव्रती मुनि बने और व्रती पुरुष आत्मज्ञान प्राप्त करने में तत्पर बनें। उत्कृष्ट आत्मज्ञानी अपने आप ही अति उत्कृष्ट हो जाता है।



अध्याय-७

मोक्ष की परिभाषा एवं भेद

सव्यस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्यणो हु परिणामो।

णेओ स भाव मोक्खो दव्विमुक्खो य कम्पयुहभावो॥३७॥

सब कर्मों के नाश का कारण जो आत्मा का परिणाम है उसको भावमोक्ष जानना चाहिए। और कर्मों की जो आत्मा से सर्वथा भिन्नता है वह द्रव्य मोक्ष है।

अभेद रत्नत्रय रूप स्वशुद्ध परिणाम या परम यथात्यात चारित्र को भाव मोक्ष द्वारा जो समस्त द्रव्य कर्मों का क्षय होता है। इस भाव मोक्ष द्वारा जो समग्र रूप से आत्मा से पृथक्करण होता है उसे द्रव्य मोक्ष कहते हैं। मोक्ष तत्त्व का वर्णन करते हुए आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है—

बन्धहेत्वभाव निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः (२)

बन्ध हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्मान्तिक क्षय होना ही मोक्ष है। मिथ्यादर्शन अविरति, प्रमाद, कषाय और राग, द्वेष बंध के कारणों का निरोध/अभाव हो जाने पर नूतन कर्मों का आना (आस्व) रूक जाता है। क्योंकि कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता ही है।

तप आदि निर्जरा के कारणों का सन्निधान (निकटता) होने पर पूर्व अर्जित संचित कर्मों का विनाश हो जाता है।

प्रश्न : कर्मबन्ध—सन्तान जब अनादि है तो उसका अन्त नहीं होना चाहिए क्योंकि जो अनादि होता है उसका अन्त नहीं होता तथा दृष्ट विपरीत (प्रत्यक्ष से विपरीत) की कल्पना करने पर प्रमाण का अभाव होता है।

उत्तर : अनादि होने से अन्त नहीं होता ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे बीज और अंकुर की सन्तान अनादि होने पर भी अग्नि से अन्तिम बीज के जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कर्मबन्ध के कारणों को भस्म कर देने पर भवांकुर का उत्पाद नहीं होता अर्थात् भवांकुर नष्ट हो जाता है यही मोक्ष है। इस दृष्ट बात का लोप नहीं कर सकते। कहा भी है जैसे—

दग्धे बीजं यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः। कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ॥

‘बीज के जल जाने पर अंकुर उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार कर्मबीज के जल जाने पर भवांकुर उत्पन्न नहीं होता है। कृत्स्न (सम्पूर्ण) कर्म का कर्म-अवस्था रूप से क्षय हो जाना कर्मक्षय है, क्योंकि ‘सत्’ द्रव्य का द्रव्य स्वरूप से विनाश नहीं हैं किन्तु पर्यायरूप से उत्पत्तिमान होने से उसका विनाश होता है तथा पर्याय, द्रव्य को छोड़कर नहीं है अतः पर्याय की अपेक्षा द्रव्य भी व्यय को प्राप्त हैं, ऐसा कह दिया जाता है। क्योंकि पर्याये उत्पन्न और विनष्ट होती हैं अतः पर्यायरूप से द्रव्य होता है। अतः कारण वशात् कर्मत्वं पर्याय को प्राप्त पुद्गल द्रव्य का कर्मबंध के प्रत्यनीक (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूप) कारणों के सन्निधान होने पर उस कर्मत्वं पर्याय की निवृत्ति होने पर उस का क्षय हो जाता है। उस समय वह पुद्गल द्रव्य अकर्म पर्याय से परिणत हो जाता है। इसलिये कृत्स्न कर्म क्षय को मुक्ति कहना युक्त ही है।

हेदुमभावे णियणा जायदि णाणिस्य आसवणिरोधो
आसवभावेण विणा जायवि कम्मस्स दु णिरोधो ॥५०॥
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इन्दियरहिदं अव्वावहं सुहमणंतं ॥५१॥

(पंचास्तिकाय प्राभृत)

कर्मों के आवरण में प्राप्त संसारी जीव का जो क्षयोपशमिक विकल्प रूप भाव हैं वह अनादिकाल से मोह के उदय के वश रागद्वेष मोहरूप परिणमता हुआ अशुद्ध हो रहा है यही भाव है। अब इस भाव से मुक्त होना कैसे होता है सो कहते हैं।

जब यह जीव आगम की भाषा से काल आदि लक्ष्य को प्राप्त करता है तथा अध्यात्म भाषा से शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणाम रूप स्वसंवेदन ज्ञान को पाता है तब पहले मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम होने पर फिर उसका क्षयोपशम होने पर सराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है। तब अर्हत् आदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि के द्वारा पर के आश्रित धर्मध्यानरूप बाहरी सहकारी कारणों के द्वारा मैं अनंत ज्ञानादि स्वरूप हूँ इत्यादि भावना स्वरूप आत्मा के आश्रित धर्मध्यान को पाकर आगम में कहे हुए क्रम से असंयत सम्यग्दृष्टि को आदि लेकर अप्रमत्त

संयत पर्यन्त चार गुणस्थानों के मध्य में से किसी भी एक गुणस्थान में दर्शनमोह को क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर मुनि अवस्था में अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में चढ़कर आत्मा सर्व कर्म प्रकृति आदि से भिन्न हैं ऐसे निर्मल विवेकमयी ज्योतिरूप प्रथम शुक्ल ध्यान का अनुभव करता है। फिर रागद्वेष रूप चारित्र मोह के उदय के अभाव होने पर निर्विकार शुद्धात्मानुभव रूप वीतराग चारित्र को प्राप्त कर लेता है जो चारित्र मोह के नाश करने में समर्थ है। इस वीतराग चारित्र के द्वारा मोहकर्म का क्षय कर देता है। मोह के क्षय के पीछे क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थान में अन्तमुहूर्त काल ठहर कर दूसरे शुक्ल ध्यान को ध्याता है। इस ध्यान से ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों को एक साथ इस गुणस्थान के अन्त में जड़ मूल से दूर कर केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्यस्वरूप भाव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

दंसणणाणसमग्रं ज्ञाणं णो अदणदव्वसंजुतं।
जायदि णिजारहेदु सभावसहिदस्स साधुस्स ॥(१५२)

इस प्रकार वास्तव में इन (पूर्वोक्त) भावयुक्त भावमोक्ष वाले भगवान् केवली को जिन्हें स्वरूप तृप्तपने के कारण कर्मविपाक कृत सुख-दुःखरूप विक्रिया नष्ट हो गई है, उन्हें आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनंत ज्ञान दर्शन से सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामय के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्य द्रव्य के संयोग से रहित हैं और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण जो कथंचित् ध्यान नाम के योग्य हैं ऐसा आत्मा का स्वरूप आत्मा की निज दशा पूर्व संचित कर्मों की शक्ति का शातन (क्षीणता) अथवा उसका पतन (नाश) देखकर निर्जरा के हेतु रूप से वर्णन किया जाता है।

जो संवरेण जुत्तो निज्जरमाणोव सव्वकम्माणि।
वव्यगदवेदाउस्तो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥(१५३)

वास्तव में केवली भगवान् को, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्धि होने के कारण उत्तर कर्म संतति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पूर्व कर्मसंतति की जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयु कर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्धात विधान से आयु कर्म के जितनी होती है— आयु कर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

अपुर्णभव/सिद्ध गति के लिए भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय – आयु-
नाम – गोत्ररूप कर्म पुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष वियोग है वह
द्रव्यमोक्ष है।

ज्ञानावरणीय, दर्शनवरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातियाँ
कर्मों के क्षय से अरहन्त केवली बनते हैं। तीर्थकर केवली समोशरण की विभूति
के साथ उपदेश करके भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का स्वरूप बताते हैं और सामान्य
केवली गंधकुटी में विराजमान होकर भव्य जीवों को उपदेश देते हैं। तीर्थकर
केवली नियम से जघन्य रूप से नौ वर्ष एवं उत्कृष्ट रूप से अन्तमुर्हृत अधिक 8
वर्ष कम, एक पूर्व कोटि वर्ष तक उपदेश करते हैं। अंत में समवसरण या गंध
कुटी का विसर्जन होता है। दिव्य ध्वनि के द्वारा उपदेश देना भी संकोच हो जाता
है और केवली योग निरोध करते हैं। जो मुनीश्वर 6 महिना आयु शेष रहते
केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनके नाम, गोत्र एवं वेदनीय कर्म की स्थिति
अधिक होती है वे केवली समुद्धात भी करते हैं। अन्त में ‘अ इ उ ऋ लू’ इन
पांच लघु अक्षर के उच्चारण काल प्रमाण अयोगी गुणस्थान (14 वें) में जीव
रहता है। उपान्त (द्विचरम, अंतिम समय के पहले 1 समय) समय में 72
प्रकृतियों का एवं अन्तिम समय में 13 प्रकृतियों का नाश करके जीव सिद्ध
बुद्ध-नित्य निरंजन बन जाता है।

गोम्मटसार में कहा भी है—
सीतेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविष्पमुक्को, गय जोगो केवली होदि॥(65)

जो अठारह हजार शील के भेदों का स्वामी हो चुका है और जिसके कर्मों
के आने का द्वाररूप आस्त्रव सर्वथा बन्द हो गया है तथा सत्य और उदयरूप
अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा
मुक्त होने के समुख हैं, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग
केवली कहते हैं।

अट्टविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चाः।
अट्टगुणा किदकिच्चा, लोयगणिवासिणो सिद्धा॥६८॥

जो ज्ञानावरणदि अष्ट कर्मों से रहित हैं, अनंत सुखरूपी अमृत के अनुभव
करने वाले शान्तिमय हैं, नवीन कर्मबन्ध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग

अंजन से रहित हैं, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य अव्याबाध अवगाहन, सूक्ष्मत्व,
अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृत्यकृत्य हैं— जिनके कोई
कार्य करना बाकी न रहे हैं, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको
सिद्ध कहते हैं।

प्रश्न : अनादि काल से मोक्ष को जाते हुए जीवों से जगत् की शून्यता हो
जायेगी अर्थात् अनादिकाल से जो मोक्ष को जीव जा रहे हैं तो न्यून होते होते
कभी न कभी जगत् में जीव सर्वथा न रहेंगे ?

उत्तर : जैसे क्रम से जाते हुए जो भविष्यत् काल के समय हैं उनसे यद्यपि
भविष्यकाल के समयों की राशि में न्यूनता होती है तथापि उस समय राशि का
अन्त कदापि नहीं। इसी प्रकार मुक्ति में जाते हुए जीवों से यद्यपि जगत् में
जीवराशि की न्यूनता होती है तथापि उस जीव राशि का अन्त नहीं है। यदि ऐसा
कहो तो यह शंका भी होती है कि पूर्वकाल में बहुत जीव मोक्ष को गये हैं तब इस
समय जगत् की शून्यता क्यों नहीं दीख पड़ती ? तो इस पर यह भी उत्तर है कि
अभव्य जीव तथा अभव्य के समान भव्य जीवों का मोक्ष नहीं है। फिर जगत् की
शून्यता कैसे होगी ?

विश्व में जीवों की संख्या अनन्तानन्त हैं जो कि अक्षय अनन्त हैं। अनन्त
का अर्थ है जिस राशि में आय नहीं होते हुये भी व्यय होने पर भी कभी अन्त नहीं
होता है। अक्षय अनन्त का अर्थ है जो अनन्त कभी अंत नहीं होता है। संसारी
जीवराशि तो अक्षय अनन्तानन्त है परन्तु एक निगोद शरीर में भी जो जीवराशि हैं
वह भी अनन्तानन्त है। अनंत काल से अभी तक जो अनन्तानन्त जीव मोक्ष गये उस
से भी अनंतगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं।

यदि चक्षु से नहीं दिखाई देने वाला निगोद शरीर में स्थिति जीव राशि
कितनी हैं यह तो छद्मस्थ की कल्पना से भी बाहर हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड में
कहा भी है—

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिङ्॥
सिद्धेहिं अणतगुणा सव्वेण वितीय कालेण॥

एक निगोद शरीर में वर्तमान जीव द्रव्य प्रमाण से अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा
संख्या से अनंतानन्त हैं। अर्थात् सर्व जीव राशि के अनन्त बहु मात्र मात्र संसारी

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग है जीवों की राशि है, उसके असंख्यात्में भाग का प्रमाण जीव एक निगोद शरीर में सदा विद्यमान रहते हैं। वे अनन्तज्ञात हैं ऐसा परमागम में कहा है। तथा वे सर्व जीव राशि के अनन्त वें भाग मात्र जो अनादिकाल से हुए सिद्ध जीव है उनसे अनन्तगुणे हैं। तथा समस्त अतीत काल के समयों से भी अनन्तगुणे हैं। इससे काल की अपेक्षा इस शरीर में निगोद जीवों की संख्या कही। क्षेत्र और भाव की अपेक्षा उनकी संख्या आगम के अनुसार कहते हैं। समस्त आकाश के प्रदेशों से और केवल ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों से अनन्तगुणा हीन हैं तथा लोकाकाश के प्रदेशों से और सर्वावधिज्ञान के विषयभूत भावों से अनन्त गुणित हैं। परमागम में उनकी संख्या से जिन भगवान् के द्वारा दृष्ट कहा है इसलिए कोई विरोध नहीं है।

शंका – आठ समय और छह मास में छह सौ आठ जीवों को कर्मों का क्षय करके सिद्ध होने पर सिद्ध राशि की वृद्धि देखी जाती है और संसार में जीवराशि की हानि देखी जाती है। तब कैसे सर्वदा एक शरीर में रहने वाले निगोद जीव सिद्धों से अनन्तगुणे हो सकते हैं? तथा काल के समयों का समूह सर्व जीवराशि से अनन्तगुणा है। अतः अपने योग्य अनंत भाग काल बीतने पर संसारी जीव राशि का क्षय और सिद्धराशि की वृद्धि सुधारित है।

समाधान – उक्त शंका ठीक नहीं है क्योंकि केवल ज्ञान रूप दृष्टि से केवलियों के द्वारा और श्रुतज्ञान रूप दृष्टि के द्वारा सदा देखा गया भव्य संसारी जीव राशि का अक्षयपना अति सूक्ष्म होने से तर्क का विषय नहीं है। तथा जो तर्क प्रत्यक्ष और आगम से बाधित है वह प्रमाण नहीं है। जैसे अग्नि शीतल होती है क्योंकि द्रव्य होता है, जो द्रव्य होता है वह शीतल होता है जैसे जल धर्म मरने पर दुःख देता है पुरुष से आश्रित होने से। जो-जो पुरुष के आश्रित होता है, वह-वह दुखदायी होता है, जैसे अधर्म। ये तर्क प्रत्यक्ष और आगम से बाधित हैं।

शंका – तब तर्क से बाधित आगम को कैसे प्रमाण माना जा सकता है?

समाधान – नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और अन्य तर्कों से सम्भवित आगम के अविसंवादि होने से उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है। तथा आपका तर्क प्रत्यक्ष और आगम का विरोधी होने से अप्रमाण है।

शंका – तब वह तर्क कौन सा है। जिससे आगम का प्रामाण्य निश्चित है?

समाधान – समस्त भव्य संसारी जीव राशि अनन्तकाल बीतने पर भी क्षय को प्राप्त नहीं होती क्योंकि वह अक्षय अनन्त प्रमाण है। जो-जो अक्षयानन्त होता

है वह अनन्तकाल में भी क्षय को प्राप्त नहीं होता है। जैसे इतने हैं इस रूप से परिमित होने पर भी तीन काल के समय भी समाप्त नहीं होते। ये सब द्रव्यों की पर्याय अथवा अविभाग प्रतिच्छेदों का समूह कभी समाप्त नहीं होता। इस प्रकार अनुमान का अंग जो तर्क है उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है।

उपर्युक्त विषय को सुगम बनाने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। 1 संख्या को 10,100,1000 आदि से विभाजन 1/10,1/100,1/1000 करते जाने पर भी कभी भाज्य एक 1 संख्या पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होगी। इस प्रकार तीन का वर्ग मूल भी समाप्त नहीं होगा। इस ही प्रकार काल तथा संसारी जीवों की संख्या के बारे में जानना चाहिए।

**पतति कदाचिन्भसः खाते - पातलतोऽपि जलमेति /
देवमचिन्त्य बलवद् बलवान्ननु पुरुषकाटोऽपि //
अभिमतासिद्धिरथोषा भवति हि पुरुषस्य पुरुषकाटेण /
देवमेति यदापि कथयसि पुरुषगुणः सोऽप्यदृष्टात्म्यः //**

यद्यपि अर्चित्य भाग्य तो बलवान् होता ही है, कभी पुरुषार्थ भी बलवान् हो जाता है। क्योंकि, कभी (वर्षाकाल में) तो पानी आकाश से जलाशय में गिरता है और पुरुषार्थ से खोदे हुए जलाशय में पाताल से भी निकलता है, अर्थात् कभी पानी आकाश से जलाशय में गिरता है और कभी पुरुषार्थ द्वारा पाताल से जलाशय में निकलता है।

पुरुषार्थ से ही मनुष्य की सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। जिसे अदृश्य या भाग्य कहा जाता है, वह अदृष्ट नाम का ही पुरुष का एक गुण होता है, अर्थात् पुरुषार्थ के अतिरिक्त दैव कुछ नहीं है। पुरुषार्थ का ही दूसरा नाम भाग्य है।

॥५॥

अमर्यादित कामेच्छा को मर्यादित करने के लिए तथा महामानव को जन्म देने के लिए चारित्र मोहनीय कर्म की परवशता से विवाह बंधन है, परन्तु विवाह धर्म नहीं है।

117

अध्याय-८

सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म का स्वरूप

विश्व के प्रत्येक द्रव्य के जो स्व-स्व शुद्ध स्वभाव हैं वह ही सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म है। इस लेख में जीव सम्बन्धी विचार- विमर्श करेंगे। जीव में अनन्त धर्म होते हैं उसमें से कतिपय धर्म के बारे में प्रकाश डाल रहे हैं।

1. सत्य – जो यथार्थ हो, पवित्र हो, अनन्त शक्तियों का पिण्ड हो, समस्त गुण, धर्म, अच्छाइयों का आधार हो- स्रोत हो, उसे सत्य कहते हैं। जो विश्व में शुद्ध रूप में विद्यमान हो, उसे परम सत्य जानना चाहिए। जीव की भावात्मक – पवित्रता आध्यात्मिक सत्य हैं। पवित्रता से रहित सत्य बोलना, धार्मिक – क्रिया – काण्ड करना भी असत्य हैं, अधर्म है। भाव की पवित्रता रहित सत्य बोलना कभी कभी असत्य से भी अधिक भयंकर हो सकता है। जैसा कि शिकारी को शिकार का पता बताना। दुष्ट भाव से सहित चोर, डाकू, वेश्या, दुष्ट, बदमाशों के मीठे वचनों से भी अधिक सत्य, पवित्र भाव से युक्त गुरु सज्जनों के कठोर कड़वी वचन हैं। कलहकारी, निन्दात्मक, कठोर, बकवास, अहंकार पूर्ण, फूट डालने वाला सत्य वचन भी असत्य हैं। उचित वचन का पालन नहीं करना, प्रामाणिकता का अभाव, निर्धारित समय में काम नहीं करना, कूट-कपट करना, धोखा- धड़ी करना, मायाचारी करना, चोरी- डकैती, मिलावट, काला-बाजारी, ठगी, एवं स्व-योग्य कर्तव्यों का पालन नहीं करना, दूसरों की हंसी उड़ाना आदि भी असत्य हैं।

2. समता / अहिंसा – आत्मा की समरसता / शांति को नष्ट नहीं करना या हत्या / हिंसा नहीं करना आदि को समता / अहिंसा कहते हैं। प्रत्येक जीव का शुद्ध स्वरूप समता/अहिंसा/सुख-शान्तिमय के कारण प्रत्येक जीव सुख-शांति को चाहता है। भले कोई जीव ज्ञान या धर्म नहीं चाहता हो या कोई जीव धन या नाम नहीं चाहता हो तथापि प्रत्येक जीव सुख-शांति तो चाहता ही है। जैसा कि नास्तिक/ मिथ्याद्रष्टि धर्म नहीं चाहता है तथापि सुख-शांति तो चाहता ही है तथा निःपृह साधु सन्त धन या नाम नहीं चाहते हैं तथापि सुख-शांति चाहते हैं। यहाँ

तक कि वनस्पति, कीट, पतंग आदि अविकसित श्रुद्र जीव भी सुख-शांति चाहते हैं। ऐसी सर्व जीवों के सर्व श्रेष्ठ, सर्व जेष्ठ, प्रिय वस्तु को बाधा पहूँचाना, नष्ट करना, विकृत करना पाप है, अधर्म है, अपराध है। स्वयं की समरसता/ शांति की हत्या किये बिना दूसरों की सुख-शांति की हत्या नहीं हो सकती है अतएव स्व हिंसा/ भावहिंसा ही यथार्थ से हिंसा है और दूसरों की जो हिंसा होती है उसे द्रव्य हिंसा गौण-हिंसा कहते हैं। असत्य, कूरता, घमण्ड, मायाचारी, तृष्णा, धृणा, कठोरता, चोरी आदि से आत्मा की समरसता/ शांति की हत्या होती है अतः यह सब हिंसा ही है। अतः शरीर के अवयवों के नष्ट करने रूप द्रव्यहिंसा से भी बड़ी हिंसा कूरता, धृणा, तृष्णादिरूपी भाव हिंसा है। कृषि कार्य से आनुशांगीकरण से अनेक जीव मरने पर भी कृषक से भी ज्यादा हिंसक वह व्यापारी है जो कि मिलावट करता है, शोषण करता है, कृत्रिम रूप से अभाव उत्पन्न करके अधिक मूल्य से माल बेचता है, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तथा हिंसात्मक बीड़ी, तम्बाकु, पानमसाला, शराब, चर्म निर्मित वस्तु, चर्बी मिश्रित तथा अखाद्यादि मिश्रित वस्तु बेचता है, दूसरों की मजबुरियों का लाभ उठाकर व्याजादि के माध्यम से शोषण करता है। दूसरों की प्रगति, प्रशंसा, अच्छाइयों से डाह करना, उसमें बाधा डालना, सार्वजनिक सम्पत्ति आदि का दूरुपयोग करके अस्वच्छ करके दूसरों को बाधा पहूँचाना भी हिंसा है। राष्ट्र की रक्षार्थी, दूसरों की रक्षार्थी, आत्मा की रक्षार्थी या न्याय-धर्म की रक्षार्थी जो विपुल मनुष्यों की भी हत्या हो जाती है उससे भी गर्हित हिंसा वह है जो हत्या धन, भोजन, मंत्र सिद्धि, देवी-देवता की प्रसन्नता के लिये या धर्म के नाम पर एक भी पशु-पक्षी या मनुष्य की जीती हैं। स्वयं हिंसा करना, हिंसा करने के लिए प्रेरित करना, हिंसा के लिए सहमत होना, हिंसा की योजना बनाना, हिंसा में योगदान देना आदि भी हिंसा हैं। कथंचित् हिंसा करने वालों से भी वह अधिक हिंसक है जो हिंसा की योजनादि बनाता है, कूर, कूटील, असहिष्णु भाव रखता है, धृणा रूपी अग्नि से जलता रहता है। जैसा कि विष पिकर मरनेवाला तो स्वयं उस विष से अधिक से अधिक एक बार ही मरेगा परन्तु विष पिलाने वाला, उसे बेचने वाला विपुल जीवों को मार डालेगा। इसी ही प्रकार शराब, बीड़ी, तम्बाकु, मांसादि सेवन करने वालों से भी उसका व्यापार करने वाला, झूठ बोलने वालों से भी झूठ व्यवसाय (झूठे

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग वकील, जज, व्यापारी, भ्रष्टाचारी, नेतादि) करने वाले, चोर- डाकू, ठगी से भी इस कार्य से प्राप्त धन का व्यापार करने वाले, उन्हें नियोजित करने वाले, उन्हें संरक्षण देने वाले, वेश्यागमन करने वालों से भी वेश्याओं का व्यापार करने वाले अधिक हिंसक/ पापी/ अर्धमां हैं। इसलिए केवल शरीर से द्रव्य हिंसा आदि पाप नहीं करने वालों को धार्मिक नहीं मान लेना चाहिए। जैसा कि कुछ युद्ध में राजा, सेनापति आदि युद्ध नहीं करते हैं परन्तु मुख्य कारण/सुत्रधार वे ही होते हैं। इसलिए साक्षात् द्रव्य-युद्ध नहीं करने पर भी वे भाव युद्ध करते हैं। इसलिए हिंसा का पूर्ण भागी होते हैं। इसी प्रकार वर्तमान काल में अनेक भ्रष्टाचार, घोटाला, हत्या, बलात्कार के प्रछन्द मुख्य कर्णधार/सुत्रधार नेता, मंत्री, नौकरशाही, पुलिस, उद्योगपति, व्यापारि आदि होने से वे ही इन पापों के पूर्ण उत्तरदायी हैं।

3. सापेक्ष विचार/सहिष्णुता (उदारता) – विश्व के प्रत्येक द्रव्य / घटक / घटकों के अनेक गुण – धर्म पक्ष/ कारण होने के कारण उन्हें उन-2 दृष्टियों से देखना चाहिए / समझना चाहिए / कथन करना चाहिए। इसे ही अनेकान्त सिद्धांत, वैचारिक अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता, सापेक्ष सिद्धान्त, स्याद्वाद आदि कहते हैं। इसके कारण बौद्धिक- विकास, भावात्मक- विशालता, आत्मा कि पवित्रता, कथन में लचिलापन / मृदुता आती है जिससे सत्यग्राहिता, नम्रता, सहिष्णुता आती है तथा संकीर्णता, कटुता, झगड़ा, कलह, द्वेष, फूट, युद्ध, विग्रह, हिंसा, आदि घटती हैं। यह गुण उस व्यक्ति में प्रगत होता है जो अंधविश्वास, संकीर्णता, घमण्ड, पूर्वाग्रही, हठाग्रही, मायाचारी आदि दुर्गुणों से रहित होता है।

भूत का विश्व- इतिहास और वर्तमान का प्रायोगिक ज्ञान यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जो कुछ वाद-विवाद, विसंवाद, कलह, झगड़ा, युद्ध होते हैं उसमें मुख्य कारण संकीर्णता/ असहिष्णुता अनुदारता है। उत्तर व्यक्ति से लेकर विश्वांति तक के लिए सापेक्ष विचार, सहिष्णुता की आवश्यकता है। धार्मिक इतिहास, पुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म में भी जो मत, मतान्तर, फूट, कलह, युद्ध होते हैं वे भी असहिष्णुता के कारण हैं। धर्म के प्रचारक यथा: तीर्थकर, पैगम्बर, ईसा-मसीह, साधु- संत जो उपदेश करते हैं आगे जाकर उनके अनुयायी उनके ही सिद्धान्त को लेकर या उनको ही लेकर झगड़ा, कलह, फूट आदि करते हैं।

अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग आज जैन धर्म, हिंदु धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म में अपने-2 एक ही ग्रंथ एवं एक ही धर्म प्रचारक को लेकर फूट से लेकर युद्ध तक करते रहते हैं। इसी प्रकार राजनीति में, समाज में, परिवार में, ग्राम में, नगर में, प्रांतमें, राष्ट्र में, अंतर्राष्ट्रमें इस असहिष्णुता के कारण विषमता फलती – फूलती हैं।

प्रकारान्तर से सत्य, अहिंसा, अर्चोर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सत – विश्वास, सदविज्ञान, सदाचार, क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, पवित्रता, संयम, तप, त्याग, शालीनता, विनम्रता, परोपकारीता, दानशीलता, सहिष्णुता, उदारता आदि ही सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म हैं। इस धर्म के सहायक हैं – स्वावलम्बन, सहकार, समयानुबन्धता, प्रामाणिकता, साहस, स्वस्ति, स्वास्थ्य, योग्य-परिस्थिति, कर्तव्यनिष्ठा, कर्मशिलता, योग्य साधनादि।

विश्व में जो विभिन्न नामधारी धर्म- पंथ- संप्रदाय- मजहब है या धार्मिक रीती-रिवाज, पूजा-पाठ, तीर्थ-यात्रा, पर्व, महोत्सव, धार्मिक स्थल, मूर्ति, धार्मिक ग्रन्थ, वेषभूषा, भाषा, पूराण, इतिहास, किम्बदन्ती, परम्परा, मंत्र, दीक्षा, शिक्षा, देवी- देवता आदि हैं वे सब धर्म के लिए अधिक से अधिक साधक / निमित्त हो सकते हैं। इसे ही धर्म मान लेना महान भूल होगी। जैसे कि आम शब्द को ही यथार्थ से आम मानना, अहिंसा शब्द को ही यथार्थ से अहिंसा मान लेना, भारत के नक्सा को ही यथार्थ से भारत मान लेना।

सत्य में लोकालोक (विश्व एवं प्रति विश्व) स्थित समस्त 6 द्रव्य 7 तत्त्व एवं 8 पदार्थ गर्भित हैं तो समता में समस्त मुनि तथा श्रावक धर्म अन्तर्गत हैं तथा सापेक्ष सिद्धांत में समस्त वैचारिक और कथन प्रणाली गर्भित हैं। अतएव सत्य, समता एवं सापेक्ष ही सार्वभौम, वैश्विक सर्वोदय धर्म है। अतः सत्य ही परमेश्वर, समता हि सदाचार और सापेक्ष ही समन्वय शुभाशय हैं।



चिंतन के क्षणों में
आचार्यरत्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

